श्रीमद् भगवद्गीता

(द्वितीयो अध्याय)



सम्पादक

डा. कर्णसिंह

श्रीमद्भगवद्गीता

द्वितीयोऽध्यायः

संपादक

डॉ० कर्णसिंह

.अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,

मेरठ कालिज, मेरठ



साहित्य भण्डार

शिक्षा साहित्य प्रकाशक

सुभाष बाज़ार, मेरठ-२५०००१

* प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री (अध्यक्ष)
प्रतिष्ठान :
साहित्य भण्डार,
सुभाष बाजार, मेरठ
दूरभाष : ०१२१-२४२३७५४
कार्यालय : 0121-2423654
'शास्त्री सदन'
२५४, वैस्टर्न कचहरी रोड, मेरठ।
दूरभाष : ०१२१-२६५६६४४
टैली फैक्स : ०१२१-४००९६६९

* नवीन संस्करण २००९

बुक कोड A098

* मूल्य : पच्चीस रुपये (२५.००)

* मुद्रक :
दुर्गा ऑफसैट प्रिंटर्स
मेरठ।

विषय-सूची

तृतीय संस्करण

पूर्व संस्करणों को पाठकों ने समुचित रूप से स्वीकार किया है। परिणाम-स्वरूप पुस्तक का तृतीय संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

—कर्णसिंह

द्वितीय संस्करण के दो शब्द

'गीता' द्वितीय अध्याय का द्वितीय संस्करण, इतना शीघ्र आ जायेगा, यह आशा तो स्वयं सम्पादक ने भी कभी नहीं की थी। इसी से प्रमाणित होता है कि गीता-जैसी सर्वसुलभ रचना को प्रस्तुत टीका के साथ पाठकों ने पसन्द किया है। साथ ही, 'लीक से हटकर' हुए इसके सम्पादन को भी पाठकों ने सराहा है। सर्वशुद्ध मुद्रण भी इसका एक कारण है।

छात्रों और अध्यापकों के अतिरिक्त अनेक गीता-प्रेमी, स्वाध्यायशील प्रौढ़ पाठकों से प्राप्त सम्मतियों से भी सम्पादक को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला है। एतदर्थ सम्पादक अपने सभी पाठकों के प्रति आभारी है।

द्वितीय संस्करण को कुछ और अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। 'परंतपः' (अध्याय २ श्लोक ३) शब्द का अर्थ इस दृष्टि से द्रष्टव्य है।

प्रथम संस्करण में 'परंतपः' शब्द का अर्थ 'परम तपस्वी' किया गया था। किन्तु, इस द्वितीय संस्करण में 'शत्रु को सन्तप्त करने वाला' किया गया है। यह अर्थ युद्ध-भूमि में खड़े अर्जुन को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से, निश्चय ही अधिक उपयुक्त है। इस संशोधन के लिए, हम अपने एक सुधी समीक्षक के हृदय से आभारी हैं।

—कर्णसिंह

कृष्णजन्माष्टमी १९५८

प्रथम संस्करण का निवेदन

'श्रीमद्भगवद्गीता' का पाठ्यक्रम में आना, दो ही उद्देश्यों की ओर संकेत करता है—

१. संस्कृत की एक क्लासिक रचना के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों से पाठकों को परिचित कराना।

२. सरल सुबोध भाषा तथा संवाद-शैली में रचित 'गीता' के माध्यम से संस्कृत-भाषा की सुबोधता और सरलता से पाठकों का परिचय कराकर उन्हें संस्कृत-अध्ययन की ओर उन्मुख करना।

प्रस्तुत प्रयास में, उपर्युक्त दोनों ही उद्देश्यों को लक्ष्य में रक्खा गया है। तदनुसार प्रथम उद्देश्य की पूर्ति में पाठकों की सहायता के लिए गीता के मूल-पाठ के पहले, 'अवश्य पठनीय' शीर्षक के अन्तर्गत—'महाभारत' 'श्रीमद्भगवद्-गीता' तथा 'द्वितीय अध्याय' इन तीन उपशीर्षकों में ज्ञातव्य विषय को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे पाठक, केवल पाठ्यसामग्री तक ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण 'श्रीमद्भगवद्गीता' के साथ ही सम्पूर्ण 'महाभारत' को भी पढ़ने के लिए उत्सुक हो जायें।

दूसरे उद्देश्य की पूर्ति में पाठकों की सहायता के लिए, गीता के श्लोकों का यथासम्भव शाब्दिक अनुवाद देते हुए, भाषा के प्रवाह को बनाये रक्खा गया है। अनुवाद के बाद शब्दार्थ, और शब्दार्थ के बाद व्याकरण में, संस्कृत शब्दों की रचना को, प्रकृति+प्रत्यय के माध्यम से स्पष्ट करते हुए, एक बार पुनः गीता के ही नहीं; अपितु, संस्कृत-शब्दों के अर्थों को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही, संस्कृत भाषा में पाठकों की गति कराने के लिए कुछ ऐसे, बहुत-ही, सामान्य, किन्तु बहुत ही आवश्यक संस्कृत के शब्द-रूपों और धातुरूपों की आवृत्ति के लिए भी अवसर जुटा दिया गया है।

'प्रस्तुत प्रयास' कहाँ तक उपयोगी बन पड़ा है, यह तो पाठकों की प्रतिक्रिया से ही विदित हो पायेगा; किन्तु अपनी ओर से हम अपने इस प्रयास से इसलिए सन्तुष्ट हैं, क्योंकि इससे स्वय हमें एक नई दिशा प्राप्त हुई है। 'प्रस्तुत प्रयास' लीक से कुछ हटकर है। और, साथ ही उत्साहजनक भी है।

चन्द्रिका,
शिवाजी मार्ग, मेरठ-२५०००१ —कर्णसिं
दूरभाष ७२५०० कृष्णजन्माष्टमी १९८

अवश्य पठनीय

एक सर्वांगपूर्ण स्वतन्त्र रचना के रूप में सम्मान प्राप्त कर लेने पर भी, 'श्रीमद्भगवद्गीता' महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास रचित 'महाभारत' महाकाव्य का ही एक लघु प्रकरण है। अतः 'गीता' के विषय में कुछ लिखने से पूर्व यहाँ, संक्षेप में महाभारत पर, कुछ लिख देना उपयोगी होगा।

महाभारत

'महाभारत', एक ऐसा विशालकाय ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें एक लाख श्लोक हैं। मानव-जीवन से सम्बन्धित ऐसा एक भी विषय नहीं है, जिसका उल्लेख 'महाभारत' में न हुआ हो। महाभारतकाल के साथ ही उससे पूर्वकाल के भी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक सभी विषय इसमें संकलित हैं। साथ ही, धर्म और राजनीति के गम्भीर एवं तात्त्विक विचारों और सिद्धान्तों से भी यह ओतप्रोत है। युद्धक्षेत्र हो या धर्मचर्चा, सामाजिक समस्या हो या वैयक्तिक समस्या, राष्ट्रीय संघर्ष हो या गृह-कलह —सभी प्रकार की उलझनों को सुलझाने के लिए उचित मार्गदर्शन, महाभारत से हो जाता है। 'महाभारत' के प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में 'वेदव्यास' की यह उक्ति बहुत ही सटीक है

"धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥

—महाभारत, आदिपर्व ६२, ५३ ॥

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—भारतीय संस्कृति के आधारभूत इन चार पुरुषार्थों से सम्बन्धित जो भी विषय महाभारत में है, वही अन्यत्र भी देखने को मिलता है, और जो यहाँ नहीं है वह अन्यत्र भी कहीं दिखलाई नहीं पड़ता है।

निश्चय ही, विषयों की इसी बहुलता के कारण 'महाभारत' को ज्ञान का 'विश्वकोश' (Encyclopaedia) कहा जाता है।

पाश्चात्य विद्वान् 'सिलवाँ लेवी' की महाभारत के सम्बन्ध में यह उक्ति यहाँ ध्यान देने योग्य है --

"The Mahabharat is not only the largest, but also the grandest of all epics, as it contains throughout a lively teachning of morals under a glorious garment of poetry."

अर्थात् "सभी ऐतिहासिक महाकाव्यों में, 'महाभारत' केवल सबसे विस्तृत ही नहीं है, अपितु सबसे उत्कृष्ट भी है, क्योंकि यह, आदि से अन्त तक काव्य के सुन्दर परिधान में प्रस्तुत की गयी. उत्तम आचरण की जीवन्त शिक्षाओं से ओतप्रोत है।"

'महाभारत' महाकाव्य में, सम्पूर्ण कथानक को १८ पर्वों अर्थात् प्रकरणों में विभक्त किया गया है। पर्वों के नामों से ही, उनके कथानक का भी संकेत मिल जाता है। अतः, महाभारत के पर्वों का नामतः उल्लेख यहाँ किया जा रहा है :—

१—आदिपर्व	२--सभापर्व	३—वनपर्व
४—विराटपर्व	५ -- उद्योगपर्व	६—भीष्मपर्व
७—द्रोणपर्व	८—कर्णपर्व	९—शल्यपर्व
१०—सौप्तिकपर्व	११—स्त्रीपर्व	१२—शान्तिपर्व
१३—अनुशासनपर्व	१४—आश्वमेधिक पर्व	१५—आश्रमवासिक पर्व
१६—मौसलपर्व	१७—महाप्रास्थानिकपर्व	१८—स्वर्गारोहणपर्व।

'महाभारत' के कथानक पर दृष्टिपात करते ही यह ज्ञात हो जाता है कि इस महाकाव्य की सर्वप्रमुख घटना 'महाभारत-युद्ध' है। यह युद्ध आज से लगभग ५ हजार वर्ष पूव कौरवों और पाण्डवों के बीच हुआ था। पहले दस दिन तक, इस युद्ध मे कौरवों के सेनापति भीष्मपितामह थे। उसके बाद का सेनापतित्व क्रमशः द्रोणाचार्य, कर्ण और शल्य ने किया था। 'महाभारत' के 'भीष्मपर्व' में भीष्म की देखरेख में हुए युद्ध का वर्णन है।

---:०:---

श्रीमद्भगवद्गीता

'महाभारत' महाकाव्य के 'भीष्मपर्व' का ही एक उपपर्व 'श्रीमद्भगवद्-गीता' है। महाभारत-युद्ध के प्रथम दिन ही भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से इसका प्रादुर्भाव हुआ था। भगवान् (श्रीकृष्ण) के द्वारा कही (गायी) जाने के कारण ही इसका नाम 'श्रीमद्भगवद्गीता' है। इसमें १८ अध्यायों में ७०० श्लोक हैं। वक्ताओं की दृष्टि से गीता के श्लोकों की संख्या इस प्रकार है:—

धृतराष्ट्र केवल १ श्लोक का वक्ता है।
संजय कुल ४२ श्लोकों का वक्ता है।
अर्जुन ने कुल ८४ श्लोकों में अपनी बात कही है,
तथा शेष कुल ५७३ श्लोकों में श्री कृष्ण का उपदेश है।

यहाँ स्थूल दृष्टि से देखने पर भी यह सहज ही विदित हो जाता है कि 'श्रीमद्भगवद्गीता' के प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण और अर्जुन ही हैं। इन दोनों के मध्य होने वाला सीधा-संवाद ही गीता का मुख्य अंश है। इसी अंश में गीता का वह उपदेश है, जो अर्जुन के माध्यम से, श्रीकृष्ण ने सभी संसारी मनुष्यों के लिए 'कुरुक्षेत्र' के मैदान में दिया है। कुरुक्षेत्र के मैदान में हुए 'श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद' को संजय ने 'धृतराष्ट्र' को ठीक उसी प्रकार सुनाया है, जैसे आजकल रेडियो पर हम 'आँखों देखा हाल' सुनते हैं। संवाद-शैली में लिखे जाने के कारण ही 'गीता' में बीच-बीच में 'अर्जुन उवाच' और श्रीकृष्ण उवाच'—जैसे शीर्षक-संकेत मिलते हैं।

गीता का महत्त्व

किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में कर्त्तव्य-बोध की कविता ही गीता है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक 'गीता' का सर्वाधिक महत्त्व अपनी इसी विशेषता के कारण रहा है। यद्यपि ज्ञान, कर्म और भक्ति—इन तीनों का ही सुन्दर समन्वय गीता में हुआ है, तथापि ज्ञान और भक्ति की अपेक्षा कर्म को ही इसमें अधिक महत्त्व दिया गया है। कुरुक्षेत्र के मैदान में, कौरवों और पाण्डवों की सेना के मध्य, मोहयुक्त और निराश होकर किंकर्तव्यविमूढ हुए

तथा धनुष छोड़कर अपने कर्तव्य से पराङ्मुख होते हुए अर्जुन को लक्ष्य करके ही यह उपदेश श्रीकृष्ण द्वारा उस समय दिया गया था। अतः, इसका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय तो अर्जुन को, उसके कर्तव्य-कर्म की प्ररणा देना ही है। इसके अतिरिक्त, शेष सभी ज्ञान और ध्यान की बातें तथा भक्ति का उपदेश तो केवल इसलिए है जिससे कि श्रीकृष्ण के उपदेश को ग्रहण करने में बाधक होने वाली, अर्जुन की अनेक शंकाओं को दूर किया जा सके। परिणामस्वरूप, महाभारतकाल से लेकर आजतक कर्तव्याकर्तव्य के विषय में विमूढ हुए असंख्य जन का मार्गदर्शन गीता करती चली आ रही है।

कुछ लोग 'गीता' को केवल एक 'आध्यात्मिक ग्रन्थ' मानकर ही सन्तोष कर लेते हैं। किन्तु, इसके साथ ही गीता एक 'नीतिशास्त्र' या 'कर्तव्यशास्त्र' भी है। गीता में श्रीकृष्ण ने सांसारिक कर्तव्य से विमुख होते हुए अर्जुन को इस संसार में रहते हुए ही अपने कर्तव्य को पूरा करने का उपदेश दिया है। संसार से भागकर, वनों में जाकर तपस्या आदि करना और इस प्रकार मोक्ष आदि की कामना करना 'गीता' नहीं सिखलाती। अपितु, इस संसार में रहते हुए ही अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह करना ही 'गीता' की शिक्षा है।

इसके साथ ही 'गीता' का अन्य महत्त्वपूर्ण उपदेश है कि मनुष्य को अपने सभी कर्म, निष्काम भाव से ही करने चाहिएं। निष्काम भाव से अपने कर्मों को करता हुआ मनुष्य मोह से मुक्त होता है, और तभी वह मोक्ष का पात्र बनता है। तभी मनुष्य, जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूट पाता है। इसी निष्काम कर्म को गीता में 'कर्मयोग' कहा गया है।

इस प्रकार 'गीता' में व्यवहार के माध्यम से ही परमार्थ की शिक्षा दी गयी है। जीवन-संघर्ष और आत्मचिन्तन—यहाँ दोनों का ही समन्वय हुआ है। 'गीता' में 'कर्म ही धर्म' है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने युद्ध के मैदान में, अर्जुन से बार-बार कहा है—'युद्धस्व युद्धस्व।' 'गीता' के इसी उपदेश को ध्यान में रखकर श्री लोकमान्य तिलक ने गीता का महत्त्व इन शब्दों में व्यक्त किया है:—

"भक्ति और ज्ञान का मेल कराके, इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला और इसके द्वारा संसार से दुःखित मनुष्य को

शान्ति देकर, निष्काम कर्तव्य के आचरण में लगा देने वाला, गीता के समान बालबोध ग्रन्थ, संस्कृत की कौन कहे, समस्त संसार के साहित्य में नहीं मिल सकता।"

—गीतारहस्य, पृष्ठ १

ऐसे ही महत्त्वपूर्ण विचारों के कारण विश्व-साहित्य में 'गीता' का विशिष्ट स्थान है। 'गीता' का, कर्म का सिद्धान्त सभी देशों, सभी सम्प्रदायों और सभी अवस्था के मनुष्यों के लिए उपयोगी है। भारतीय और विदेशी—सभी विद्वान् गीता से प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, और निम्बार्काचार्य आदि–सभी आचार्यों ने गीता पर भाष्य लिखे हैं। पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों ही वर्गों के विद्वानों ने अपनी-अपनी भाषाओं में 'गीता' का अनुवाद किया है। गीता ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसका संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। सर्वाधिक साहित्य भी 'गीता' पर ही उपलब्ध होता है।

सन्त ज्ञानेश्वर, मधुसूदन आचार्य, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, वीर सावरकर, श्री अरविन्द डॉ० राधाकृष्णन, और विनोबा भावे आदि सभी गीता से प्रभावित रहे हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन के समय सक्रिय क्रान्तिकारियों में से सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल और भाई परमानन्द—जैसे अनेक क्रान्तिकारी 'गीता' से ही प्रेरणा प्राप्त करते हुए फाँसी के तख्ते पर झूल गये। गांधी जी के जीवन में 'गीता' का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्होंने गीता को 'माँ' के रूप में स्वीकार किया है:—

"आज गीता मेरी 'बाइबिल' और 'कुरान' ही नहीं है बल्कि इससे बढ़कर भी कुछ और है—यह मेरी माता है।"

असंख्य अन्य लोगों के अनुभव की भांति ही गांधी जी का भी यह अनुभव था कि संकट और निराशा के समय 'गीता' से ही उन्हें समुचित समाधान मिला है। वे लिखते हैं—

"जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और अकेला पड़ने पर मुझे आशा की एक भी किरण नहीं दिखाई देती, मैं भगवद्गीता के पास लौटकर जाता हूँ। मुझे कोई श्लोक यहाँ, कोई वहाँ दीख जाता है और मैं तुरन्त घोर संकटों के बीच भी मुस्कराने लगता हूँ।"

'गीता' की प्रशंसा करने में पाश्चात्य विद्वान् भी पीछे नहीं हैं। जर्मन विद्वान् 'हम्बोल्ट' ने गीता के प्रति अपनी मान्यता इन शब्दों मे प्रकट की है:—

"The most beautiful perhaps the only true philosophical song existing in any known tongue."

अर्थात् (गीता) किसी भी ज्ञात भाषा में, सर्वाधिक सुन्दर और सम्भवतः सच्चे अर्थों में दर्शन का गीत है।

इसी प्रकार अमेरिकन सन्त 'थारो', महान् अमेरिकन लेखक 'राल्फ वाल्डो एमर्सन, अंग्रेज विद्वान् एल्डुअस हक्सले आदि अनेक विद्वानों ने भी गीता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अन्त में, स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में हम कह सकते हैं कि:—

"मनुष्य-जीवन के लिए गीता से अधिक जागरूक प्रहरी शायद ही कोई और हो।"

—:o:—

श्रीमद्भगवद्गीता

द्वितीय अध्याय का सारांश

'श्रीमद्भगवद्गीता' के द्वितीय अध्याय में कुल ७२ श्लोक हैं। इनमें से ३ श्लोक संजय के हैं, ६ अर्जुन के हैं और शेष ६३ श्लोक श्रीकृष्ण के द्वारा कहे गये हैं।

प्रतिपाद्य विषय के विचार से गीता के प्रमुख सिद्धान्तों में से दो सिद्धान्त इस दूसरे अध्याय में आ गये हैं—

१—आत्मा की अमरता का सिद्धान्त।

२—निष्काम कर्म का सिद्धान्त।

द्वितीय अध्याय में श्लोक संख्या १ से १० तक, कृष्ण और अर्जुन का वह संवाद है, जिसमें उस परिस्थिति को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें 'गीता' का प्रादुर्भाव हुआ है।

श्लोक संख्या ११ से ३० तक, देही और देह अर्थात् आत्मा और शरीर से सम्बन्धित तात्त्विक ज्ञान को प्रस्तुत किया गया है। इस ज्ञान का सार है कि देही (आत्मा) अमर है और देह (शरीर) नश्वर है।

> "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

अर्थात् 'आत्मा' को न शस्त्र काटते हैं, न अग्नि जलाती है, न जल गीला करते हैं और न वायु सुखाती है।

एक शरीर को छोड़कर आत्मा का दूसरे शरीर को ग्रहण करना, ठीक वैसा ही है, जैसा हमारे द्वारा एक वस्त्र को उतारकर दूसरे वस्त्र को पहन लेना है। देही और देह के इसी तात्त्विक ज्ञान को 'सांख्ययोग' अथवा 'ज्ञान-योग' भी कहा जाता है।

श्लोक संख्या ३१ से ३८ तक, अर्जुन को क्षात्रधर्म का उपदेश देने के

उपरान्त, द्वितीय अध्याय में ३९ से ५३ तक के श्लोकों में श्रीकृष्ण ने 'निष्कामकर्म' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यही गीता का 'कर्मयोग' है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

अर्थात् केवल कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है, उस किये गये कर्म के फल की प्राप्ति पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। अतः, कर्म के फल की इच्छा से तुम्हें कोई काम नहीं करना चाहिए। साथ ही, कर्म न करने में भी तुम्हारी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। निष्काम कर्म के इसी सिद्धान्त को यहाँ 'समत्वबुद्धियोग' भी कहा गया है।

अध्याय के अन्त में, श्लोक संख्या ५४ से ७२ तक 'स्थितप्रज्ञ' का प्रकरण है। ५४ वें श्लोक में, अर्जुन द्वारा 'स्थितप्रज्ञ' के विषय में पूछने के उपरान्त, आगे के श्लोकों में श्रीकृष्ण ने इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

अन्त में, 'स्थितप्रज्ञता' की इस स्थिति को ही 'ब्राह्मी स्थिति' कहते हुए श्रीकृष्ण के द्वारा द्वितीय अध्याय का उपसंहार हुआ है।

—:०:—

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्

द्वितीयोऽध्यायः

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

अन्वय—तथा कृपयाविष्टम्, अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्, विषीदन्तम् (अर्जुनम्) मधुसूदनः इदम् वाक्यम् उवाच ।

विषय-संकेत—प्रथम अध्याय में, शोक-सन्तप्त अर्जुन द्वारा धनुष-बाण त्याग देने पर आगे के घटनाक्रम का वर्णन करते हुए, संजय ने धृतराष्ट्र से कहा है ।

अनुवाद—उस प्रकार से करुणा से ग्रस्त को, आंसुओं से भरी हुई (इसीलिए) व्याकुल दृष्टि वाले (और दुःखी होते हुए उस (अर्जुन) को मधुसूदन (श्रीकृष्ण) ने यह वचन कहा ।

शब्दार्थ—कृपयाविष्टम् = करुणा से ग्रस्त को,
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् = आँसुओं से भरी हुई (इसीलिए) आकुल दृष्टि वाले को,
विषीदन्तम् = दुःखी होते हुए को,
तम् = उस (अर्जुन) को,
मधुसूदनः = (मधु नाम के दैत्य) को मारने वाले (श्रीकृष्ण) ने,
इदम् वाक्यम् = यह (आगे कहे जाने वाला) वचन ।
उवाच = कहा ।

व्याकरण—कृपयाविष्टम् = कृपया, आविष्टम् = तृतीया तत्पुरुष समास ।
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् = अश्रुपूर्णम् (अतएव) आकुलम् च तद् ईक्षणम्, यस्य तम् । बहुव्रीहि समास
विषीदन्तम् = वि + सद् (सीद् और स् को ष्) + शतृ (अत्), पुंल्लिङ्ग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन ।
उवाच = √वच् + लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

टिप्पणी—'संजय उवाच' से तात्पर्य है कि यह धृतराष्ट्र के प्रति संजय की उक्ति है ।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

अन्वय—अर्जुन, त्वा, अनार्यजुष्टम्, अकीर्तिकरम्, अस्वर्ग्यम्, इदम्, कश्मलम् कुतः समुपस्थितम् ?

विषय संकेत— कृष्ण ने अर्जुन से पूछा----

अनुवाद—हे अर्जुन ! तुमको, आर्य लोगों से सेवित न होने वाला, यश को प्राप्त न कराने वाला (और) स्वर्ग को (भी) प्राप्त न कराने वाला यह अवसाद कहाँ से प्राप्त हो गया है ?

शब्दार्थ—अनार्यजुष्टम्=जुष्ट अर्थात् सेवित, आर्यजुष्ट=आर्यों से सेवित, न+आर्यजुष्ट, अनार्यजुष्ट अर्थात् जो आर्यों द्वारा सेवित नहीं है ।

अकीर्तिकरम्=कीर्ति+कर=यश प्राप्त कराने वाला, न+कीर्तिकर=अकीर्तिकर अर्थात् जो यश प्राप्त कराने वाला नहीं है ।

अस्वर्ग्यम्=स्वर्ग्य=स्वर्ग प्राप्त कराने वाला, न+स्वर्ग्य अस्वर्ग्य, जो स्वर्ग प्राप्त कराने वाला नहीं है ।

कश्मलम्=अवसाद (खिन्नता, उदासी) ।

कुतः=कहाँ से, किस कारण से ।

समुपस्थितम्=प्राप्त हो गया है ।

व्याकरण—त्वा=युष्मद् शब्द का द्वि० वि०, एकवचन । त्वाम् के स्थान पर त्वा विकल्प से होता है ।

कुतः=किम्+तसिल् (तस्), किम् को 'कु' हो जाता है । इसी प्रकार अतः, ततः, यतः आदि रूप बनते हैं ।

समुपस्थितम्=सम्+उप+√स्था+क्त, नपुंसक लिंग, एकवचन ।

टिप्पणी—श्रीभगवान्+उवाच=इस वाक्य से स्पष्ट होता है कि यह अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण (भगवान्) की उक्ति है ।

3 क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।३।।

अन्वय—पार्थ, क्लैब्यम् मा स्म गमः, (यतः) एतत् त्वयि न उपपद्यते । (हे) परंतप ! क्षुद्रम्, हृदय-दौर्बल्यम् त्यक्त्वा उत्तिष्ठ ।

विषय-संकेत—कृष्ण द्वारा अर्जुन को, अकर्मण्यता को छोड़ने का परामर्श ।

अनुवाद – हे पृथापुत्र (अर्जुन) ! नपुंसक मत बनो । यह तुम्हारे योग्य (बात) नहीं है ! हे शत्रु को सन्तप्त करने वाले (अर्जुन) ! हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को छोड़कर (तुम) उठ खड़े होओ (और युद्ध करो) ।

शब्दार्थ—पार्थ = पृथा का पुत्र (अर्जुन), कुन्ती का ही नाम पृथा भी है । इस तरह युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन आदि सभी भाई पार्थ कहलाते हैं । किन्तु यहाँ अर्जुन को ही पार्थ कहा गया है ।
क्लैब्यम् = क्लीबता, नपुंसकता ।
मा स्म गमः = मत बनो, मत प्राप्त हो । इस वाक्यांश का प्रयोग इसी रूप में अनेकत्र होता है ।
परंतप = शत्रु को सन्तप्त करने वाला (अर्जुन), सम्बोधन है ।
क्षुद्रम् = तुच्छ, छोटा, हल्कापन ।

व्याकरण—पार्थ = पृथा + अण् (अपत्य अर्थ में) ।
क्लैब्यम् = क्लीब + ष्यञ् (भाव अर्थ में) ।
त्यक्त्वा = त्यज् + क्त्वा ।
उत्तिष्ठ = उत् + √स्था (तिष्ठ) लोट् लकार, म०. पु० एकव० ।
उपपद्यते = उप √पद, लट् लकार, प्रथम पु० एकव० आत्मनेपद ।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।

इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

अन्वय—(हे) मधुसूदन ! संख्ये, अहम् भीष्मम् प्रति च द्रोणम् प्रति, इषुभिः कथम् योत्स्यामि । (हे) अरिसूदन ! (तौ तु मम) पूजार्हौ (स्तः) ॥

विषय-संकेत—अर्जुन का कथन—"युद्ध कैसे करूँ ?"

अनुवाद—हे मधुसूदन ! युद्ध में, मैं भीष्म (पितामह) और (आचार्य) द्रोण के साथ बाणों से युद्ध कैसे करूँगा । हे अरिसूदन (कृष्ण), (वे दोनों तो मेरे) पूज्य हैं ।

शब्दार्थ—**संख्ये**=युद्ध में ।
भीष्मं प्रति=भीष्म पितामह से ।
द्रोणं प्रति=द्रोणाचार्य से ।
इषुभिः=बाणों से ।
अरिसूदन=अरि (शत्रु) को मारने वाले (कृष्ण) सम्बोधन ।
पूजार्हौ=पूजा करने के योग्य अर्थात् पूज्य हैं ।
योत्स्यामि=युद्ध करूँगा ।
कथम्=किस प्रकार से, (कैसे) ।

व्याकरण—**भीष्मं प्रति**=प्रति के योग में भीष्मम् में द्वितीया विभक्ति ।
(अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि)
योत्स्यामि=युध्, लृट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन ।
कथम्=किम्+थमु (प्रत्यय) । दूसरे सर्वनाम शब्दों से यथा, तथा, इत्थम् आदि रूप बनते हैं ।

टिप्पणी—'अर्जुन उवाच' से तात्पर्य है कि यह कृष्ण के प्रति अर्जुन की उक्ति है ।

अस्मद् शब्द के रूप

अहम्	आवाम्	वयम्
माम् (मा)	आवाम् (नौ)	अस्मान् (नः)
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
मह्यम् (मे)	आवाभ्याम् (नौ)	अस्मभ्यम् (नः)
मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
मम (मे)	आवयोः (नौ)	अस्माकम् (नः)
मयि	आवयोः	अस्मासु ।

5 गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिर-प्रदिग्धान् ॥५॥

अन्वय—महानुभावान् गुरुन् अहत्वा, इहलोके भैक्ष्यम् भोक्तुम् अपि श्रेयः। हि गुरुन् हत्वा (अपि), तु इह एव रुधिर-प्रदिग्धान् अर्थ कामान् भुञ्जीय ।

विषय-संकेत—अर्जुन का कथन—"इस युद्ध में जीतने से अच्छा है भीख माँगकर जी लेना ।"

अनुवाद—(अत. इन सामने उपस्थित) महानुभावों (गुरुओं) को न मारकर, इस लोक में भिक्षान्न खाना भी (मेरे लिए) अच्छा है । क्योंकि (इन) गुरुओं को मारकर (भी) तो यही (इसी लोक मे) रक्त से सने हुए अर्थ और कामों को भोगूँगा ।

शब्दार्थ—अहत्वा—न मारकर ।
भैक्ष्यम् भोक्तुम् अपि=भिक्षा से प्राप्त अन्न खाना भी ।
श्रेयः=कल्याणकारी है, अच्छा है ।

इह एव=यहीं, अर्थात् इसी संसार में ! अर्जुन का तात्पर्य है कि इन गुरुओं को मारने से उसे कोई स्वर्ग तो मिल नहीं जायेगा ।

रुधिरप्रदिग्धान्=रुधिर से सने हुए अर्थात् इन गुरुओं के वध करने के परिणाम स्वरूप मिलने वाले ।

अर्थ-कामान्=अर्थ से तात्पर्य है विभिन्न प्रकार के पदार्थ और काम से तात्पर्य है विभिन्न कामनाएँ, इच्छाएँ ।

भुञ्जीय—भोगूँगा ।

व्याकरण—अर्थाश्च कामाश्च: अर्थकामा:, तान्=अर्थकामान् ।
रुधिरैः प्रदिग्धान्=रुधिरप्रदिग्धान् ।
भुञ्जीय=√भुज्, विधिलिङ्ग, उत्तम पुरुष, एकवचन ।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

अन्वय—एतत् च न विद्मः, (यत्) नः कतरत् गरीयः । यद् वा जयेमः । यदि वा नः जयेयुः । (तथापि) यान् हत्वा न जिजीविषामः ते एव धार्तराष्ट्राः (मम) प्रमुखे अवस्थिताः (सन्ति) ।

विषय-संकेत—युद्ध के विषय में अर्जुन का संशय—

अनुवाद—और, यह (भी) हम नहीं जानते हैं (कि युद्ध करने और युद्ध न करने में से) कौनसा काम हमारे लिये अच्छा है । (युद्ध करने पर भी) हम जीतेंगे कि वे जीतेंगे । फिर भी जिनको मारकर हम जीना नहीं चाहते हैं, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र (अर्थात् कौरव) (हमारे) बिल्कुल सामने खड़े हुए हैं । (यहाँ अर्जुन ने अपने लिए 'मम' एकवचन के स्थान पर नः बहुवचन का प्रयोग किया है ।)

शब्दार्थ—न विद्मः=(हम) नहीं जानते हैं ।
कतरत्=कौनसा (दो में से एक) । गरीयः=श्रेष्ठ, अच्छा ।
यद्वा=अथवा । यदि वा=अथवा ।
जयेम=हम जीतेंगे । जयेयुः=वे जीतेंगे ।
न जिजीविषामः=जीवित रहने की इच्छा नहीं करते हैं ।
धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्र के पुत्र (बहुवचन) ।
प्रमुखे=बिल्कुल सामने ।
अवस्थिताः=स्थित हैं, खड़े हुए हैं, विद्यमान हैं ।

व्याकरण—विद्मः=√विद्+लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन ।
जयेम=√जि+विधिलङ्, उत्तम पुरुष, बहुवचन ।
जयेयुः=√जि+विधिलङ्, प्रथम पुरुष, बहुवचन ।
जिजीविषामः=√जीव्+सन्<जिजीविष् (सन्नन्त धातु) का लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन ।
अवस्थिताः=अव+√स्था+क्त, बहुवचन (पुंल्लिङ्ग) ।
धार्तराष्ट्राः=धृतराष्ट्र+अण् (अपत्य अर्थ में (पुंल्लिङ्ग प्रथमा वि०, बहुवचन ।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

अन्वय—(अतः) कार्पण्य-दोष-उपहत-स्वभावः, धर्म-संमूढचेताः (अहम्) त्वाम् पृच्छामि—यत् निश्चितम् श्रेयः स्यात्, तत् मे ब्रूहि। (यतः) अहम् ते शिष्यः (अत.) त्वाम् प्रपन्नम् माम् शाधि।

विषय-संकेत—किंकर्तव्यविमूढ होने पर, अर्जुन का श्रीकृष्ण की शरण में जाना।

अनुवाद—(इसलिए) बुद्धि की दुर्बलता के दोष से नष्ट हुए स्वभाव वाला (और धर्म के विषय में कुण्ठित चित्त वाला (मैं) तुमसे पूछता हूँ—(कि) जो निश्चित रूप से श्रेयस्कर हो वह (बात) मुझे बतलाइये (क्योंकि) मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। (अतः) तुम्हारी शरण में आये हुए को मुझको शासित करो।

शब्दार्थः—कार्पण्य=बुद्धि की दुर्बलता। विचारशीलता की कमी।
दोष=बुराई, कमी।
धर्म-संमूढचेताः=करने योग्य कर्म (धर्म) के विषय में कुण्ठित हुई चेतना वाला।
त्वाम् प्रपन्नम्=तुम्हारे पास आए हुए को। तुम्हारी शरण में आये हुए को (मुझे)।
शिष्यः=जो शासन के योग्य है।
माम् शाधि=अधिकारपूर्वक मुझे शासित करो, आज्ञा दो।

व्याकरण—कार्पण्य=कृपण्+ष्यञ् (भाव अर्थ में तद्धित प्रत्यय।
उपहत=उप+√हन्+क्त (पुंलिङ्ग, एकवचन)
कार्पण्यः एव दोषः, कार्पण्यदोषः, तेन उपहतः स्वभावः यस्य सः।
धर्मे समूढः चेतो यस्य सः=धर्मसंमूढचेताः (बहुव्रीहि समास)।
स्यात्=√अस्+विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन।
ब्रूहि=√ब्रू+लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।
शाधि=√शास्+लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

अन्वय—हि भूमौ असपत्नम्, ऋद्धम् राज्यम् च सुराणाम् आधिपत्यम् अवाप्य (अपि) तत् (उपायम्) न प्रपश्यामि, यत् मम इन्द्रियाणाम् उच्छोषणम् शोकम् अपनुद्यात् ।

विषय-संकेत—अर्जुन का राज्य-प्राप्ति से भी शोक दूर न होने का कथन है ।

अनुवाद—क्योंकि, भूमि पर शत्रुरहित, सम्पन्न राज्य को और देवताओं के स्वामित्व को पाकर भी वह (उपाय) मैं बिल्कुल भी नहीं देख पा रहा हूँ, जो मेरी इन्द्रियों को सुखा देने वाले (इस उत्पन्न) शोक को दूर कर दे ।

शब्दार्थ—असपत्नम् = प्रतिद्वन्द्वी रहित या शत्रुरहित ।
ऋद्धम् = समृद्ध ।
आधिपत्यम् = अधिपति होने को, स्वामी को ।
न प्रपश्यामि = नहीं देख पा रहा हूँ । 'प्र उपसर्ग प्रकर्षता के लिए है, अर्थात् बिल्कुल भी नहीं देख पा रहा हूँ ।
उच्छोषणम् = सुखा देने वाला ।
अपनुद्यात् = दूर हटा दे, दूर कर दे ।

व्याकरण—असपत्नम् = नास्ति सपत्नो यस्मिंस्तत (बहुव्रीहि समास)
आधिपत्यम् = अधिपति + ष्यञ् (भाव अर्थ में तद्धित प्रत्यय)
अवाप्य = अव + आप् + क्त्वा (ल्यप्) ।
अपनुद्यात् = अप + √नुद् + आशीर्लिङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन ।
प्रपश्यामि = प्र + (दृश्) पश्य + लट्, उत्तम पुरुष, एकवचन ।
√दृश् (पश्य), लट् लकार के रूप

पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

अन्वय—परंतप, गुडाकेशः हृषीकेशम् एवम् उक्त्वा, गोविन्दम् 'न योत्स्ये' इति ह उक्त्वा, तूष्णीम् बभूव।

विषय-संकेत—"अर्जुन ने युद्ध न करने का निश्चय कर लिया।"—धृतराष्ट्र को संजय की सूचना।

अनुवाद—हे परंतप! (राजन् धृतराष्ट्र) नींद पर विजय पा लेने वाला (अर्जुन) इन्द्रियों के स्वामी (श्रीकृष्ण) को, इस प्रकार (उपर्युक्त) कहकर (और) "नहीं लड़ूँगा।" कृष्ण से यह कहकर चुप हो गया।

शब्दार्थ—परंतप! संजय द्वारा धृतराष्ट्र के लिए सम्बोधन पद है।

गुडाकेशः—गुडाका + ईशः अर्थात् नींद को जीत लेने वाला अर्जुन।

हृषीकेशः = हृषीक + ईशः, हृषीक अर्थात् इन्द्रियाँ, उनका ईशः अर्थात् स्वामी = श्रीकृष्ण।

तूष्णीम् = चुप, मौन (अव्यय है)।

व्याकरण—गुडाकेशः = गुडाकायाः ईशः, तत्पुरुष समास।

हृषीकेशः = हृषीकाणाम् ईशः, तत्पुरुष समास।

उक्त्वा = √वच् + क्त्वा।

योत्स्ये = √युध् + लृट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

तूष्णीम् = यह अव्यय है, सदैव इसी रूप में प्रयुक्त होता है।

बभूव = √भू + लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

रूप इस प्रकार होते हैं—

बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
बभूव	बभूविव	बभूविम

टिप्पणी—'संजय उवाच' से तात्पर्य है कि यह धृतराष्ट्र के प्रति संजय की उक्ति है।

संजय उवाच

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

अन्वय—(हे) भारत ! उभयोः सेनयोः मध्ये विषीदन्तम् तम् प्रहसन् इव हृषीकेशः इदम् वचः उवाच ।

विषय-संकेत—धृतराष्ट्र को संजय की सूचना—"तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा"—

अनुवाद—हे भरतवंशी (धृतराष्ट्र) (तब) दोनों सेनाओं के बीच दुःखी होते हुए उस (अर्जुन) पर हँसते हुए-से श्रीकृष्ण ने (अर्जुन को) यह वचन कहा ।

शब्दार्थ—**भारत**=भरतों के कुल में उत्पन्न होने वाला अर्थात् धृतराष्ट्र ! संजय के द्वारा धृतराष्ट्र के लिए किया गया सम्बोधन है ।

उभयोः=दोनों के ।

सेनयोः=सेनाओं के ।

मध्ये=बीच में ।

विषीदन्तम्=दुःखी होते हुए को ।

तम्=उस (अर्जुन) को ।

प्रहसन् इव=मानों हँसी उड़ा रहे हों, ऐसे ।

हृषीकेशः=श्रीकृष्ण ने ।

इदम्=यह (आगे कही जाने वाली बात) ।

वचः=वचन, बात ।

उवाच=कहा ।

व्याकरण—**भारत**=भरत+अण् ।

प्रहसन्=प्र+√हस्+शतृ (अत्), पुंल्लिङ्ग, एकवचन

प्रहसन्+इव=सन्धि होने पर 'न्' के साथ एक और न आ जाने पर प्रहसन्निव ।

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥११॥

अन्वय—त्वम् अशोच्यान् अन्वशोच, च प्रज्ञावादान् भाषसे (परम्) पण्डिताः, गतासून् च अगतासून् न अनुशोचन्ति ।

विषय-संकेत—अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति—

अनुवाद—(हे अर्जुन !) तुम शोक न करने योग्य के विषय में शोक करते हो और बुद्धिमान् लोगों-जैसी बातें करते हो । (किन्तु) पण्डितजन गये हुए प्राणवालों के विषय में और न गये हुए प्राणवालों के विषय में शोक नहीं करते हैं ।

शब्दार्थ—अशोच्यान्=अशोच्य अर्थात् जो शोक करने योग्य नहीं हैं उनके विषय में ।
अन्वशोचः=शोक करते हो ।
प्रज्ञावादान्=बुद्धिमानों के वादों अर्थात् वचनों को ।
गतासून्=गये हुए हैं असून् (प्राण) जिनके, उनको ।
अगतासून्=जिनके प्राण नहीं गये हैं उनको ।
न अनुशोचन्ति=शोक नहीं करते हैं ।

व्याकरण—अशोच्यान्=शोचितुं योग्यः, शोच्यः, न शोच्यः, अशोच्यः, तान् ।
प्रज्ञावादान्=प्रज्ञावतां वादः, प्रज्ञावादः, तान् ।
अनुशोचन्ति=अनु+√शुच्+लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन ।

टिप्पणी—'श्रीभगवानुवाच' से तात्पर्य है कि यह अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति है ।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥११॥

अन्वय—न तु (एवम्) एव, (यत्) अहम् जातु न आसम् । त्वम् न (आसीः), इमे जनाधिपाः न (आसन्) च न (एवम्) एव (यत्) अतः परम्, वयम् सर्वे न भविष्यामः ।

विषय-संकेत—अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति—

अनुवाद— न तो (ऐसा) ही है (कि) मैं कभी नहीं था, तुम (कभी) नहीं (थे), (और) ये राजालोग (भी) नहीं (थे) और न (ऐसा) ही है कि अब के बाद हम सब नही होंगे ।

शब्दार्थ—जातु = कभी (अव्यय है) ।
आसम् = मैं था ।
इमे = थे ।
जनाधिपाः = राजा लोग ।
अतः परम् = अब के बाद, अब से आगे के काल में ।
न भविष्यामः = नहीं होंगे (हम सब) ।

व्याकरण—जनाधिपाः = जनानाम् अधिपः, जनाधिपः, ते जनाधिपाः ।
आसम् = √अस् + लङ् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन ।
भविष्यामः—√भू + लृट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन ।
√अस् (होना) लङ् लकार के रूप

आसीत्	आस्ताम्	आसन्
आसीः	आस्तम्	आस्त
आसम्	आस्व	आस्म

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर-प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

अन्वय---यथा देहिनः, अस्मिन् देहे कौमारम्, यौवनम् (च) जरा (भवति) तथा (एव) (देहिनः) देहान्तर-प्राप्तिः (अपि) (भवति)। तत्र धीरः न मुह्यति।

विषय-संकेत---अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति---

अनुवाद---जिस प्रकार जीवात्मा की, इस देह में, कुमार, युवा और वृद्धा (अवस्थायें) (होती हैं) उसी प्रकार जीवात्मा को दूसरी देह की प्राप्ति भी होती है। (अतः) उस विषय में धैर्यशाली लोग मोह नहीं करते हैं।

शब्दार्थ---यथा = जैसे।
देहिनः = देही की अर्थात् देह में रहने वाले जीवात्मा की।
देहे = शरीर में।
कौमारम् = कुमार सम्बन्धी (अवस्था);
यौवनम् = युवा सम्बन्धी (अवस्था)।
जरा = बुढ़ापा (की अवस्था)।
तथा = वैसे।
देहान्तर-प्राप्तिः = दूसरी देह की प्राप्ति (भी) होती।
तत्र = उस (देहान्तर-प्राप्ति अर्थात् मृत्यु) के विषय में।
धीरः = धीर पुरुष।
न मुह्यति = मोह नहीं करते हैं अर्थात् मृत्यु होने पर शोक आदि नहीं करते हैं।

व्याकरण---यथा = यद् + थाल् (तद्धित प्रत्ययः)।
तथा = तद् + थाल् (तद्धित प्रत्यय)।
देहिनः = देहः अस्य अस्ति, इति देही, तस्य।
(देह + इन् = देहिन्, षष्ठी वि० एकवचन। तद्धित शब्द है।)

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुख-दुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।१४।।

अन्वय—(हे) कौन्तेय ! शीत-उष्ण-सुख-दुःखदाः, मात्रा-स्पर्शाः तु आगमापायिनः, (च) अनित्याः (हे) भारत ! तान् तितिक्षस्व ।

विषय-संकेत— अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति—

अनुवाद—हे कुन्तीपुत्र (अर्जुन) ! सर्दी और गर्मी तथा सुख और दुःख देने वाले (अर्थात् अनुभव कराने वाले) इन्द्रियों और विषयों के संयोग तो आने-जाने वाले (क्षणभंगुर) (और) अनित्य (सदा न रहने वाले) होते हैं । हे भरतवंशी (अर्जुन) ! तुम उनको सहन करो ।

शब्दार्थ—कौन्तेय = कुन्तीपुत्र (अर्जुन) सम्बोधन ।

शीत-उष्ण-सुख-दुःखदाः—शीतता, उष्णता, सुख और दुःख को देने वाले हैं ।

मात्रास्पर्शाः—इन्द्रियों का उनके विषयों से संयोग ।

आगम-अपायिनः = आने-जाने वाले (क्षण-भंगुर) ।

अनित्याः = जो नित्य (सदा रहने वाले) नहीं है ।

भारत = भरतों के कुल में उत्पन्न (अर्जुन) ।

तान् -- उन (शीत-उष्ण और सुख-दुःख आदि) को ।

तितिक्षस्व = सहन करो (सहो) ।

व्याकरण -- कौन्तेय = कुन्ती + ढक् (अपत्य अर्थ में), सम्बोधन ।

शीत···दाः -- सुखं ददाति = सुखद (सुखम् + √दा + क (अ) इसी प्रकार दुःखद, जलद आदि अनेक शब्द बनते हैं ।

अनित्याः = न + नित्याः (नञ् तत्पुरुष समास) ।

भारत = भरत + अण् । सम्बोधन ।

दुःख और सुख

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

अन्वय—(हे) पुरुषर्षभ ! हि समदुःख-सुखम् यम् धीरम् पुरुषम् एते न व्यथयन्ति, सः अमृतत्वाय कल्पते ।

विषय-संकेत—दुःख सुख में समान रहने वाला पुरुष मोक्ष प्राप्त करता है—

अनुवाद—हे पुरुषश्रेष्ठ ! क्योंकि दुःख और सुख में समान रहने वाले जिस धैर्यशाली पुरुष को ये (दुःख-सुख आदि) व्यथित (दुःखी) नहीं करते हैं, वह मोक्ष (प्राप्ति) के योग्य होता है ।

शब्दार्थ—पुरुषर्षभः = पुरुष + ऋषभः । ऋषभ = श्रेष्ठ अर्थात् पुरुषों में श्रेष्ठ । सम्बोधन है ।
समदुःखसुखम् = दुःख और सुख में समान ।
धीरम् = धीर पुरुष को, धैर्यशाली व्यक्ति को ।
एते = ये (सुख, दुख आदि) ।
न व्यथयन्ति = दुःखी नहीं करते हैं ।
अमृतत्वाय = अमृतत्व अर्थात् मोक्ष के लिये ।
कल्पते = कल्पना किया जाता है, पात्र हो जाता है । योग्य बन जाता है ।

व्याकरण—पुरुषर्षभ. = पुरुषाणाम् + ऋषभः = षष्ठी तत्पुरुष समास ।
व्यथयन्ति = √व्यथ् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन ।
अमृतत्वाय = अमृतत्व, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन ।
कल्पते = √कल्प् + लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन आत्मनेपद ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

अन्वय—असतः भावः न विद्यते, तु सतः अभावः न विद्यते । तत्त्वदर्शिभिः अनयोः उभयोः अपि अन्तः दृष्टः ।

विषय-संकेत—तत्त्वदर्शियों द्वारा असत् और सत् का तत्त्वज्ञान—

अनुवाद—असत् (वास्तविक रूप में सदा विद्यमान न रहने वाली) (वस्तु) का अस्तित्व नहीं होता है । और, सत्, (वास्तविक रूप से सदा विद्यमान रहने वाली) (वस्तु) का अभाव नहीं होता है । तत्त्वदर्शी (विद्वानों) ने इन दोनों के (ही) तत्त्व को जान लिया है ।

शब्दार्थ—**असतः** = असत् का (वास्तविक रूप से सदा नहीं रहने वाले पदार्थ का) ।
भावः = अस्तित्व, होना, विद्यमानता ।
न विद्यते = नहीं होता है ।
सतः = सत् का (वास्तविक रूप से सदा रहने वाले पदार्थ का) ।
अभावः = न होना । अविद्यमानता ।
तत्त्व-दर्शिभिः = तत्त्व (वास्तविकता) को जानने वालों ने ।
अनयोः उभयोः = इन दोनों सत् और असत् का ।
अन्तः = वास्तविक तत्त्व । सारभूत ज्ञान ।
दृष्टः = देख लिया है अर्थात् जान लिया है ।

व्याकरण—**असतः** = न + सत् + असत्, तस्य = असतः ।
सतः = सत् शब्द का षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।
√अस् + शतृ (अत्) करने पर सत् (होता हुआ) शब्द बनता है । फिर—
सन्—सन्तौ—सन्तः प्रथमा वि०
सन्तं—सन्तौ—सतः द्वितीया वि०
सता—सद्भ्याम्—सद्भिः तृतीया वि० आदि रूप बनते हैं ।
दृष्टः = दृश् + क्त = दृष्टः ।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

अन्वय—तु तत् अविनाशि विद्धि, येन इदम् सर्वम् ततम् । अव्ययस्य तस्य विनाशम् कर्तुम् कश्चित् अपि न अर्हति ।

विषय-संकेत—ब्रह्म के अविनाशी होने का कथन ।

अनुवाद—किन्तु (हे अर्जुन) उसको तू अविनाशी जान, जिसने यह सब (संसार) फैलाया हुआ है । नष्ट न होने वाले का, उसका विनाश करने में कोई (भी) समर्थ नहीं है ।

शब्दार्थ—अविनाशि = नष्ट न होने वाला (ब्रह्म आत्मा) (नपुंसकलिंग) ।
विद्धि = जानो ।
इदम् सर्वम् = यह सारा संसार (ब्रह्माण्ड)
ततम् = फैलाया हुआ है ।
अव्ययस्य = अव्यय का । नष्ट न होने वाले का ।
विनाशं कर्तुम् = विनाश करने के लिए, विनाश करने में ।
न अर्हति = समर्थ नहीं है । योग्य नहीं है ।

व्याकरण—विनाशम् = √नश् + घञ् = नाश । वि + नाश । द्वितीया विभक्ति, एकवचन (कर्म) ।
अविनाशि = विनाश + इन् = विनाशिन् । पुल्लिग में विनाशी, स्त्रीलिंग में विनाशिनी । नपुंसकलिङ्ग में विनाशि । न + विनाशि = अविनाशि (तत् का विशेषण)
ततम् = √तन् + क्त = ततम् (नपुं० लिङ्ग) ।
कर्तुम् = √कृ + तुमुन् = कर्तुम् ।
अर्हति = √अर्ह् = लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

अन्वय—अनाशिनः अप्रमेयस्य नित्यस्य शरीरिणः इमे देहाः अन्तवन्तः उक्ताः । तस्मात्, (हे) भारत ! युध्यस्व ।

विषय-संकेत—शरीर को विनाशशील मानकर युद्ध करने का आदेश—

अनुवाद—नष्ट न होने वाले, (प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से) अप्रमेय (अज्ञेय) (और) नित्य आत्मा के ये शरीर नाशवान् कहे गये हैं। उस कारण से, हे भरतवंशी (अर्जुन) ! तू युद्ध कर ।

शब्दार्थ—**अनाशिनः**=न नाश वाले के अर्थात् नष्ट न होने वाले के ।

अप्रमेयस्य=ज्ञान के विषय को प्रमेय कहते हैं। ज्ञान का विषय न होने से (आत्मा) अप्रमेय है, उसके ।

नित्यस्य=सदैव रहने वाले (आत्मा) के

शरीरिणः—शरीर में रहने से आत्मा शरीरी कहा जाता है अर्थात् इस शरीर वाले आत्मा के ।

इमे देहाः—ये (दिखलाई देने वाले) शरीर ।

अन्तवन्तः=अन्तवाले ।

उक्ताः=कहे गये हैं ।

भारत=भरतवंशी अर्जुन ! सम्बोधन ।

युध्यस्व=युद्ध कर ।

व्याकरण—**अनाशिनः**=न+नाशी=अनाशी, तस्य । पुंलिङ्ग ।

शरीरिणः=शरीर+इन्, शरीरी, तस्य । पुंलिङ्ग ।

अन्तवन्तः=अन्त+वतुप् (वत्), प्रथमा, बहुवचन ।

उक्ताः=ऽवच्+क्त, उक्त, प्रथमा बहुवचन । पुंलिङ्ग ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

अन्वय—यः एनम् हन्तारम् वेत्ति, च यः एनं हतम् मन्यते, तौ उभौ न विजानीतः, (यतः), न अयम् हन्ति च न (अयम्) हन्यते ।

विषय-संकेत—आत्मा को, मारने वाला या मरने वाला मानना अज्ञानता है ।

अनुवाद—(हे अर्जुन !) जो इस आत्मा को मारने वाला जानता है और जो इसको मरा हुआ मानता है, (ऐसे) वे दोनों ही नहीं जानते हैं, (क्योंकि) न (तो) वह (आत्मा) मरता है और न (यह) मारा जाता है ।

शब्दार्थ—यः = जो (व्यक्ति) ।
एनम् = इस आत्मा को ।
हन्तारम् = मारने वाला ।
वेत्ति = जानता है ।
यः एनम् हतम् मन्यते = जो इसे मरा हुआ मानता है ।
तौ उभौ = वे दोनों (ही) जानने और मानने वाले ।
न विजानीतः = नहीं जानते हैं ।
अयम् = यह ।
न हन्ति = न मारता है ।
न हन्यते = न मारा जाता है ।

व्याकरण—यः = 'यद्' सर्वनाम शब्द, पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन ।

यः	यौ	ये	हन्तारम् = √हन् + तृच्
यम्	यौ	यान्	= हन्तृ, द्वि० वि०
येन	याभ्याम्	यैः	एकवचन (पुं०)
यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः	हतम् = √हन् + क्त =
यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः	हत, द्वि० वि०
यस्य	ययोः	येषाम्	एकवचन (पुं०)
यस्मिन्	ययोः	येषु	

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

अन्वय—अयम् (आत्मा) कदाचित् न जायते, वा न म्रियते, वा न (अयम्) भूत्वा भूयः भविता। (यतः), अजः, नित्यः, शाश्वतः (च) पुराणः अयम् (आत्मा) शरीरे हन्यमाने (अपि) न हन्यते।

विषय-संकेत—आत्मा के अजन्मा, अजर और अमर होने का कथन—

अनुवाद—यह आत्मा कभी पैदा नहीं होता है, अथवा न मरता है, अथवा न यह होकर फिर होने वाला ही है। जन्म न लेने वाला, नित्य, शाश्वत (और) पुरातन यह (आत्मा) शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता है।

शब्दार्थ—कदाचित् = कभी।
न जायते = न उत्पन्न होता है।
न म्रियते = न मरता है।
भूत्वा = होकर।
भूयः = फिर। (अव्यय)
भविता = (भविष्य) में होने वाला।
अजः = जन्म न लेने वाला (आत्मा)
नित्यः = सदा रहने वाला।
शाश्वतः = नित्य रहने वाला।
पुराणः = पुराना, पुरातन।
} सभी आत्मा के विशेषण हैं।
शरीरे हन्यते—शरीर (देह) के मारे जाने पर (भी)।
न हन्यते = नहीं मारा जाता है।

व्याकरण—√जन (पैदा होना) लट् लकार के रूप

जायते	जायेते	जायन्ते
जायसे	जायेथे	जायध्वे
जाये	जायावहे	जायामहे

इसी प्रकार—म्रियते म्रियेते म्रियन्ते आदि।
इसी प्रकार—हन्यते हन्येते हन्यन्ते आदि।
भूत्वा—√भू + क्त्वा।
भविता √भू + लुट् लकार, प्रथम पु० एकव० तथा भू + तृच् (इट् का आगम)।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

अन्वय—(हे) पार्थ ! यः एनम् अविनाशिनम् नित्यम् अजम् अव्ययम् वेद, स पुरुषः कथं कं हन्ति (वा) (कथं) कं घातयति ।

विषय-संकेत—आत्मा को नित्य मानने वाला न किसी को मारता है न मरवाता है—

अनुवाद—हे पार्थ (पृथापुत्र अर्जुन) ! जो इस (आत्मा) को अविनाशी नित्य, अज (और) अविकारी जानता है, वह (ज्ञानवान्) पुरुष कैसे किसको मारता है (अथवा) कैसे किसको मरवाता है ? अर्थात् ऐसे पुरुष के विषय में मारने और मरवाने की बात ही व्यर्थ हो जाती है ।

शब्दार्थ—पार्थ = पृथा (कुन्ती) का पुत्र अर्थात् हे अर्जुन !
एनम् = इसको अर्थात् आत्मा को ।
वेद = जानता है ।
कम् = किसको ।
हन्ति = मारता है ।
घातयति = मरवाता है ।

व्याकरण—√हन् (मारना) + लट् लकार के रूप ।

हन्ति	हतः	घ्नन्ति
हंसि	हथः	हथ
हन्मि	हन्वः	हन्मः ।

हन् + णिच् = √घातय् (मरवाना) लट् लकार के रूप ।

घातयति	घातयतः	घातयन्ति
घातयसि	घातयथः	घातयथ
घातयामि	घातयावः	घातयामः ।

√विद् (जानना) लट् लकार में दो प्रकार के रूप हैं—

वेद	विदतुः	विदुः	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
वेत्थ	विदथुः	विद	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
वेद	विद्व	विद्म	वेद्मि	विद्वः	विद्मः

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

अन्वय—यथा (कश्चित्) नरः जीर्णानि वासांसि विहाय अपराणि नवानि (वासांसि) गृह्णाति । तथा (एव) देही जीर्णानि शरीराणि विहाय अन्यानि नवानि (शरीराणि) संयाति ।

विषय-संकेत—आत्मा भी शरीर बदलता है—

अनुवाद— जैसे (कोई) मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर दूसरे नये (वस्त्र) ग्रहण कर लेता है । वैसे (ही) आत्मा जीर्ण (पुराने) शरीरों को छोड़कर अन्य (दूसरे) नये शरीरों को प्राप्त हो जाता है ।

शब्दार्थ—जीर्णानि = पुराने ।
वासांसि = वस्त्र, कपड़े (पहनने के) ।
विहाय = छोड़कर । (वि + √हा) (छोड़ना) + क्त्वा (ल्यप्) ।
अपराणि = दूसरे ।
नवानि = नये ।
गृह्णाति = ले लेता है ।
संयाति = प्राप्त हो जाता है (अर्थात् प्राप्त कर लेता है ।)

व्याकरण—शरीर, अकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्द है । रूप इस प्रकार बनते हैं—

शरीरम्	शरीरे	शरीराणि ।
शरीरम्	शरीरे	शरीराणि ।
शरीरेण	शरीराभ्याम्	शरीरैः ।

शरीराय—इत्यादि (पुंलिङ्ग 'राम' के समान) ।

वासस्, सकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्द के रूप :—

वासः	वाससी	वासांसि ।
वासः	वाससी	वासांसि ।
वाससा	वासोभ्याम्	वासोभिः ।
वाससे	,,	वासोभ्यः ।
वाससः	,,	,,
वाससः	वाससोः	वाससाम् ।
वाससि	वाससोः	वाससु ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

अन्वय--(हे पार्थ) न एनम् शस्त्राणि छिन्दन्ति न एनम् पावकः दहति । न एनम् आपः क्लेदयन्ति, (च) न एनम् मारुतः शोषयति ।

विषय-संकेत—आत्मा के अविकारी होने का कथन—

अनुवाद—इस (आत्मा) को न शस्त्र काटते हैं, न इसको आग जलाती है, न इसको जल गीला करते हैं (और) न इसको वायु सुखाता है ।

शब्दार्थ—एनम्=इस (अविनाशी) आत्मा को ।
शस्त्राणि=(तलवार, कुल्हाड़ी आदि) शस्त्र ।
न छिन्दन्ति=नहीं काटते हैं ।
पावकः=अग्नि ।
न दहति=नहीं जलाता है ।
आपः=जल (केवल बहुवचन में प्रयुक्त) ।
न क्लेदयन्ति=क्लिन्न (गीला) नहीं करते हैं ।
मारुतः=वायु ।
न शोषयति=नहीं सुखाता है ।

व्याकरण—√छिद् (काटना), लट् लकार के रूप :—

छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति ।
छिनत्सि	छिन्त्थः	छिन्त्थ ।
छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः ।

√शुष्+णिच्=शोषय् (सुखाना)+लट् लकार ।

शोषयति	शोषयतः	शोषयन्ति ।

√शुष् (सूखना)+लट् लकार ।

शुष्यति	शुष्यतः	शुष्यन्ति ।

'अपस्' स्त्रीलिंग (जल) के रूप नित्य बहुवचन में होते हैं :—
आपः, अपः, अद्भिः, अद्भ्यः, अद्भ्यः, अपाम्, अप्सु ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

अन्वय—(अत.) अयम् (आत्मा) अच्छेद्यः, अयम् अदाह्यः, अयम् अक्लेद्यः च अयम् अशोष्यः एव । अयम् (आत्मा) नित्यः सर्वगतः अचलः, स्थाणुः (च) सनातनः (विद्यते) ॥

विषय-संकेत—आत्मा की निर्विकारता का वर्णन ।

अनुवाद—(इसलिए) यह (आत्मा) न काटा जाने वाला है, यह (आत्मा) न जलाया जाने वाला है, न गीला किया जाने वाला है (और) न (यह आत्मा) सुखाया जाने वाला ही है । यह आत्मा नित्य है, सब पदार्थों में गया हुआ (व्याप्त) है, अचल है, स्थाणु (स्थित रहने वाला) है और सनातन है ।

शब्दार्थ—अयम् = यह आत्मा ।

अच्छेद्यः = छेदा न जाने वाला ।

अदाह्यः = जलाया न जाने वाला ।

अक्लेद्यः = गीला न किया जाने वाला ।

अशोष्यः = सुखाया न जाने वाला ।

सर्वगत. = सब (वस्तुओं) में गया हुआ (व्याप्त) ।

स्थाणुः = स्थित रहने वाला ।

व्याकरण—अच्छेद्यः = = √छिद् + यत् = च्छेद्यः, न + च्छेद्यः = अच्छेद्यः (नञ् तत्पुरुष समास) ।

अदाह्यः = इसी प्रकार √दह् से अदाह्यः,

अक्लेद्यः = √क्लिद् से अक्लेद्यः और

अशोष्यः = √शुष् से अशोष्य बनता है ।

सर्वगतः = सर्वम् गतः, तत्पुरुष समास ।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

अन्वय—अयम् अव्यक्तः, अयम् अचिन्त्यः, अयम् अविकार्यः उच्यते । तस्मात् एनम्, एवम् विदित्वा (त्वम्) अनुशोचितुम् न अर्हसि ।

विषय-संकेत—आत्मा के अविकारी होने से शोक नहीं करना चाहिए—

अनुवाद—यह (आत्मा) अव्यक्त (इन्द्रियों का अविषय), यह आत्मा अचिन्त्य (मन का अविषय) और यह आत्मा अविकार्य (विकाररहित अर्थात् न बदलने वाला) कहा जाता है । इस (आत्मा) को इस प्रकार का जानकर भी (तुम) शोक करने के योग्य नहीं हो ।

शब्दार्थ—अव्यक्तः=जो पदार्थ इन्द्रियों—आँख, कान आदि के द्वारा जाना जाता है, वह व्यक्त कहलाता है । जो ऐसा नहीं है, वह (आत्मा) अव्यक्त है ।
अचिन्त्यः=चिन्तन का विषय न बनने वाला ।
अविकार्यः=जिसमें कोई विकार नही किया जा सकता ।
अनुशोचितुम्=शोक करने के लिये (योग्य नहीं है ।)

व्याकरण—अव्यक्तः=न+व्यक्तः । नञ् समास (तत्पुरुष)
अचिन्त्यः=न+चिन्त्यः । " "
अविकार्यः=न+विकार्यः । " "
तस्मात्=तद् शब्द, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन (पुं० नपुं०)
एनम्=एतद् शब्द, द्वितीया विभक्ति, एकवचन (पुंल्लिग)

एषः	एतौ	एते ।
एतम्	एतौ	एतान् ।
एतेन	आदि-आदि ।	

विदित्वा=विद्+क्त्वा, इट् आगम ।
शोचितुम्=शुच्+तुमुन्, इट् आगम ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

अन्वय—अथ च, त्वम् एनम्, नित्यजातम्, वा नित्यम् मृतम् मन्यसे तथापि महाबाहो, (त्वम्) शोचितुम् न अर्हसि ।

विषय-संकेत—आत्मा के लिये शोक न करने का निर्देश—

अनुवाद—और, इस पर भी यदि तुम इस (आत्मा) को सदा जन्म लेने वाला अथवा सदा मरने वाला मानते हो, तो भी हे अर्जुन ! (तुम) इस प्रकार शोक करने के योग्य नहीं हो ।

शब्दार्थ—नित्यजातम् = सदा जन्म लेने वाला ।
नित्यं मृतम् = सदा मरने वाला ।
महाबाहो = हे बड़ी भुजाओं वाले (अर्जुन) ।
शोचितुं न अर्हसि = शोक करने के योग्य नहीं हो ।

व्याकरण—महाबाहो = महान्तौ बाहू यस्य सः = महाबाहुः, सम्बोधन में महाबाहो ! जैसे शम्भुः से शम्भो !
शोचितुम् = शुच् + तुमुन् (तुम्), अव्यय ।
जातम् = जन् + क्त ।
मृतम् = मृ + क्त ।
मन् (मानना) + लट् लकार के रूप

मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे ।

युष्मद् शब्द के रूप—

त्वम्	युवाम्	यूयम्
त्वाम् (त्वा)	युवाम् (वाम्)	युष्मान् (वः)
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
तुभ्यम् (ते)	" (वाम्)	युष्मभ्यम् (वः)
त्वत्	"	युष्मत्
तव (ते)	युवयोः (वाम्)	युष्माकम् (वः)
त्वयि	"	युष्मासु ।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।२७।।

अन्वय—हि जातस्य ध्रुवः मृत्युः, च मृतस्य ध्रुवम् जन्म। तस्मात् (अपि) (अस्मिन्) अपरिहार्ये अर्थे (त्वम्) शोचितुम् न अर्हसि ।

विषय-संकेत—शरीर के जन्म और मृत्यु को टाला नहीं जा सकता—

अनुवाद—क्योंकि जन्म लेने वाले की निश्चित मृत्यु (होती है) और मरने वाले का निश्चित जन्म (होता है)। उस (कारण) से (भी) इस टाले न जाने वाले विषय में (तू) शोक करने के योग्य नहीं है ।

शब्दार्थ—जातस्य=जन्म लेने वाले की (मृत्यु)
ध्रुवः=निश्चित । पुं० लिङ्ग । ध्रुवम्=निश्चित नपुं० लिङ्ग
मृतस्य=मरने वाले का (जन्म)
तस्मात्=उस कारण से ।
अपरिहार्ये=टाले जाने वाले (कार्य) को परिहार्य कहते हैं। जो टाला न जा सके वह अपरिहार्य ।
अर्थे=विषय में (जन्म और मृत्यु के विषय में)

व्याकरण—√अर्ह (योग्य होना)+लट् लकार के रूप—

अर्हति	अर्हतः	अर्हन्ति
अर्हसि	अर्हथः	अर्हथ
अर्हामि	अर्हावः	अर्हामः ।

तस्मात्=तद् शब्द, पञ्चमी वि० एकवचन, पुं० ।

तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः ।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ।।२८।।

अन्वय—हे भारत, अव्यक्त-आदीनि (च) अव्यक्त-निधनानि भूतानि व्यक्त-मध्यानि एव । (तस्मात्) तत्र का परिदेवना ?

विषय-संकेत—जीवों की अव्यक्त और व्यक्त दशा का कथन—

अनुवाद—हे अर्जुन ! अव्यक्त है आदि जिनका (और) अव्यक्त (ही) है अन्त जिनका, ऐसे ये सम्पूर्ण प्राणी केवल बीच में ही व्यक्त-अवस्था वाले हैं। (इस कारण से) (भी) उस विषय में विलाप (आदि करने की बात) क्या करना ?

तात्पर्य यह है कि इस संसार में दिखलायी पड़ने वाले सभी जड़-चेतन पदार्थ, उत्पन्न होने से पूर्व भी दिखलाई नहीं पड़ते हैं, और नष्ट होने या मरने के बाद भी वे दिखलाई नहीं देते हैं । केवल संसार में रहने की, अपनी बीच की दशा में ही वे दिखलाई देने वाले होते हैं । अतः, ऐसी दशा में किसी भी प्राणी के मरने पर शोक (विलाप) आदि करना उचित नहीं है ।

शब्दार्थ—**अव्यक्त-आदीनि**=अव्यक्त है आदि जिनका, ऐसे । अर्थात् जो संसार में उत्पन्न होने से पहले नहीं दीखते हैं ।

अव्यक्त-निधनानि=अव्यक्त है निधन (अन्त-मरणोपरान्त) जिनका, ऐसे ।

व्यक्त-मध्यानि=व्यक्त है मध्य जिनका, ऐसे ।

परिदेवना=विलाप, दुःख प्रकट करना ।

व्याकरण—**अव्यक्तादीनि**=न+व्यक्तम्=अव्यक्तम् । अव्यक्तम् आदिः येषां ते ।

व्यक्त-मध्यानि=व्यक्तं मध्यं येषां ते ।

तत्र=तद+त्रल् (तद्धित प्रत्यय)

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

अन्वय—कश्चित्, एनम् आश्चर्यवत् पश्यति, च तथा एव (कश्चित्) अन्यः आश्चर्यवत् वदति । च (कश्चित्) अन्यः एनम् आश्चर्यवत् शृणोति, च कश्चित् श्रुत्वा अपि एनम् न एव वेद ।

विषय-संकेत— आत्मा की अनिर्वचनीयता का कथन—

अनुवाद—कोई (पुरुष) इस आत्मा को आश्चर्य की भाँति देखता है, और उसी प्रकार (कोई) दूसरा (पुरुष) आश्चर्य की भाँति (इसके विषय में) कहता है । और, (कोई) अन्य इसको आश्चर्य की भाँति सुनता है और कोई सुनकर भी इसको नहीं जानता ।

शब्दार्थ—आश्चर्यवत् = आश्चर्य (विस्मय) की भाँति ।
पश्यति = देखता है ।
श्रुत्वा अपि = सुनकर भी ।
न वेद = नहीं जानता है ।

व्याकरण—आश्चर्य + वति (वत्) (तद्धित प्रत्यय) ।

√दृश् (पश्य) (देखना) धातु + लट् लकार

पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति ।
पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ ।
पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

√वद् (बोलना) + लट् लकार

वदति	वदतः	वदन्ति । आदि

√श्रु (शृण्) लट् लकार

शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति ।
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ ।
शृणोमि	शृण्वः	शृण्मः ।

कश्चित् = कः (कौन) कः + चित् = कश्चित् = कोई ।
कंचित् = किसी को । केनचित् = किसी ने, आदि-आदि ।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

अन्वय—(हे) भारत ! सर्वस्य देहे अयम् देही नित्यम् अवध्यः । तस्मात् त्वम् सर्वाणि भूतानि शोचितुम् न अर्हसि ।

विषय संकेत—आत्मा के नित्य होने से शोक करना व्यर्थ है—

अनुवाद—हे अर्जुन ! सब के (ही) देह में यह देही (आत्मा) सदा ही अवध्य है अर्थात् न मारा जाने योग्य है । उस कारण से, तुम सभी प्राणियों के विषय में चिन्ता न करने के योग्य हो ।

शब्दार्थ—भारत = अर्जुन ! सम्बोधन है ।
सर्वस्य = सबके । देहे + देह में ।
अयम् = यह । देही = आत्मा ।
नित्यम् अवध्यः = नित्य ही अवध्य है ।
तस्मात् = उस कारण से ।
सर्वाणि भूतानि = सभी प्राणियों के विषय में ।
शोचितुम् न अर्हसि = शोक करने योग्य नहीं है (तू) ।

व्याकरण— 'सर्व' शब्द के रूप

पुल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
सर्वः	सर्वौ	सर्वे	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वम्	"	सर्वान्	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्मै	"	सर्वेभ्यः	सर्वस्यै	"	सर्वाभ्यः
सर्वस्मात्	"	"	सर्वस्याः	"	"
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	"	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्मिन्	"	सर्वेषु	सर्वस्याम्	"	सर्वासु
हे सर्व !	हे सर्वौ	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः

नपुंसकलिङ्ग

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
सर्वम्	"	" (शेष पुं० जैसे)

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

अन्वय—च स्वधर्मम् अवेक्ष्य अपि (त्वम्) विकम्पितुम् न अर्हसि । हि धर्म्यात् युद्धात् अन्यत् श्रेयः क्षत्रियस्य न विद्यते ।

विषय संकेत—क्षत्रिय के लिए युद्ध ही श्रेयस्कर होता है ।

अनुवाद—और, (हे अर्जुन) अपने (क्षत्रिय) धर्म को देखकर भी (तू) कांपने के योग्य नहीं है । क्योंकि धर्मयुक्त युद्ध से (बढ़कर) दूसरा कोई भी अच्छा कार्य क्षत्रिय के लिए नहीं है ।

शब्दार्थ—स्वधर्मम् = अपने धर्म को ।
अवेक्ष्य = देखकर (विचारकर)
विकम्पितुम् = कांपने के (योग्य) ।
न अर्हसि = योग्य नहीं हो ।
धर्म्यात् = धर्म से युक्त (न्यायपूर्ण) ।
श्रेयः = अच्छा कार्य (कल्याण कारक कार्य) ।
क्षत्रियस्य = क्षत्रिय के लिए ।
न विद्यते = नहीं है ।

व्याकरण—अवेक्ष्य = अव √ईक्ष + क्त्वा (ल्यप्) ।
विकम्पितुम् = वि + √कम्प् + तुमुन् (इट् आगम) ।

√विद् (रहना) लट् लकार के रूप

विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते ।
विद्यसे	विद्येथे	विद्यध्वे ।
विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे ।

√अर्ह् (योग्य होना) लट लकार के रूप

अर्हति	अर्हतः	अर्हन्ति ।
अर्हसि	अर्हथः	अर्हथ ।
अर्हामि	अर्हावः	अर्हामः ।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

अन्वय—पार्थ यदृच्छया उपपन्नम् च अपावृतम् स्वर्गद्वारम् ईदृशम् युद्धम् सुखिनः क्षत्रियाः (एव) लभन्ते ।

विषय संकेत—क्षत्रियों के लिए युद्ध का अवसर सौभाग्यप्रद होता है ।

अनुवाद—हे अर्जुन अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग-द्वार (के सदृश) इस प्रकार के युद्ध को सुखी क्षत्रिय लोग (ही) प्राप्त करते हैं

शब्दार्थ—**पार्थ**=पृथापुत्र (अर्जुन) ।
यदृच्छया=अपनी इच्छा से अर्थात् अपने आप ।
उपपन्नम्=पास आये हुए, प्राप्त हुए ।
अपावृतम्=खुले हुए ।
स्वर्ग द्वारम्=स्वर्ग के द्वार (को) ।
ईदृशम्=ऐसे, इस प्रकार के (युद्ध) को ।
सुखिनः=सुखी ।
क्षत्रियाः=क्षत्रिय (लोग) ।
लभन्ते=प्राप्त करते हैं ।

व्याकरण—**यदृच्छया**='यदृच्छा' शब्द का तृतीया विभक्ति, एकवचन
उपपन्नम्=उप + √पद् + क्त=उपपन्न, द्वि० एकवचन ।
अपावृतम्=अप + आ + वृत् + क्त=अपावृत् द्वि० एकवचन ।
स्वर्ग-द्वारम्=स्वर्गस्य द्वारम्, षष्ठी तत्पुरुष समास ।
सुखिनः सुख + इन्=सुखिन्, प्रथमा वि०, बहुवचन ।
लभ् (प्राप्त करना) लट् लकार के रूप

लभते	लभेते	लभन्ते ।
लभसे	लभेथे	लभध्वे ।
लभे	लभावहे	लभामहे ।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

अन्वय—अथ चेत् त्वम् इमम् धर्म्यम् संग्रामम् न करिष्यसि, ततः स्वधर्मम् च कीर्तिम् हित्वा पापम् अवाप्स्यसि ।

विषय-संकेत—युद्ध न करने पर अर्जुन के पापी होने का निर्देश—

अनुवाद—इतने पर भी यदि तुम इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करोगे तो (तुम) अपने धर्म को और (अपने) यश को त्यागकर पाप को प्राप्त करोगे ।

शब्दार्थ—अथ = इतने पर भी, इसके बाद भी ।
चेत् = यदि ।
धर्म्यम् = धर्मयुक्त (युद्ध को) ।
न करिष्यसि = (तुम) नहीं करोगे, नहीं करते हो ।
ततः = तब, उस कारण से ।
स्वधर्मम् = अपने (क्षत्रिय) धर्म को ।
कीर्तिम् = यश को ।
हित्वा = छोड़कर, त्यागकर ।
पापम् = पाप को ।
अवाप्स्यसि = प्राप्त करोगे ।

व्याकरण—ततः = तद् + तसिल् (तस्) । इसी प्रकार यतः, कुतः, आदि भी बनते हैं । सभी अव्यय होते हैं ।
हित्वा = √हा (त्याग करना) + क्त्वा (हा को हि होकर) ।

√कृ (करना) + लृट् लकार के रूप

करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः ।

अव + √आप् (प्राप्त करना) + लृट् लकार के रूप

अवाप्स्यति	अवाप्स्यतः	अवाप्स्यन्ति
अवाप्स्यसि	अवाप्स्यथः	अवाप्स्यथ
अवाप्स्यामि	अवाप्स्यावः	अवाप्स्यामः ।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

अन्वय—च भूतानि ते अव्ययाम् अकीर्तिम् अपि कथयिष्यन्ति, च अकीर्तिः सम्भावितस्य (पुरुषस्य) मरणात् (अपि) अतिरिच्यते ।

विषय-संकेत—अपयश का, मरने से भी अधिक बुरा होने का कथन—

अनुवाद—और, सब लोग तेरे कम न होने वाले अपयश को भी कहेंगे, और यह अपयश, सम्मानित पुरुष के लिए मृत्यु से भी बढ़कर (बुरा) होता है ।

शब्दार्थ—भूतानि = (संसार के) प्राणी, मनुष्य आदि ।
अव्ययाम् = कम न होने वाली ।
अकीर्तिम् = अपयश (निन्दा) ।
कथयिष्यन्ति = चर्चा करेंगे, कहेंगे ।
संभावितस्य = सम्मानित (प्रतिष्ठित) पुरुष के लिए ।
मरणात् = मरने से (भी) ।
अतिरिच्यते = बढ़कर होता है ।

व्याकरण--अव्ययाम् = वि + √इ + अच् = व्यय । न + व्यय = अव्यय
ताम् = अव्ययाम् ।
अकीर्तिम् = न + कीर्तिम् = अकीर्तिम् ।
√कथ् (कहना) + लृट् के लकार रूप (परस्मैपद)

कथयिष्यति	कथयिष्यतः	कथयिष्यन्ति
कथयिष्यसि	कथयिष्यथः	कथयिष्यथ
कथयिष्यामि	कथयिष्यावः	कथयिष्यामः ।

अति + √रिच् (य) लट् = बढ़कर होना (आ० पद)

अतिरिच्यते	अतिरिच्येते	अतिरिच्यन्ते
अतिरिच्यसे	अतिरिच्येथे	अतिरिच्यध्वे
अतिरिच्ये	अतिरिच्यावहे	अतिरिच्यामहे ।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३३॥

अन्वय—च येषाम् (महारथानाम) त्वम् बहुमतः भूत्वा लाघवम् यास्यसि (ते) महारथाः त्वाम् भयात् रणात् उपरतम् मंस्यन्ते ।

विषय-संकेत—युद्ध न करने पर अर्जुन की तुच्छता का कथन—

अनुवाद—और (हे पार्थ), जिन (महारथियों) के लिए तुम बहुत माननीय होकर (अब) क्षुद्रता (छोटेपन) को प्राप्त हो जाओगे, (वे) महारथी तुमको भय के कारण, युद्ध से विमुख हुआ मानेंगे ।

शब्दार्थ—बहुमतः = बहुत माननीय ।

भूत्वा = होकर ।

लाघवम् = क्षुद्रता को, छोटेपन को ।

महारथाः = महारथी लोग (वीरपुरुष) ।

भयात् = भय के कारण, डर के कारण ।

उपरतम् = हटा हुआ, विमुख हुआ, विरत हुआ ।

मंस्यन्ते = मानेंगे ।

व्याकरण—भूत्वा = भू क्त्वा ।

लाघवम् = लघु + अण् (तद्धित प्रत्यय)

महारथाः = 'महारथ' शब्द का प्रथमा वि० बहुवचन ।

भयात् = 'भय' शब्द, पञ्चमी वि० एकवचन ।

(कारण में पञ्चमी वि० का प्रयोग हुआ है)

उपरतम् = उप + √रम् + क्त ।

√मन् + लृट् लकार (आत्मन पद)

मंस्यते	मंस्येते	मंस्यन्ते
मंस्यसे	मंस्येथे	मंस्यध्वे
मंस्ये	मंस्यावहे	मंस्यामहे ।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

अन्वय—च तव अहिताः तव सामर्थ्यम् निन्दन्तः, बहून् अवाच्यवादान् वदिष्यन्ति । नु ततः दुःखतरम् किम् ?

विषय-संकेत—युद्ध न करने पर निन्दा होने का कथन--

अनुवाद—और (हे पार्थ), तेरे शत्रु, तेरे सामर्थ्य को निन्दा करते हुए, (तेरे लिए) बहुत सारे न कहने के योग्य वचनों को कहेंगे । (तब) निश्चय ही, उससे अधिक दुःखवाली बात (और) क्या होगी ?

शब्दार्थ—अहिताः = शत्रुगण ।
सामर्थ्यम् = सामर्थ्य को, शक्ति को ।
निन्दन्तः = निन्दा करते हुए (शत्रुगण)
बहून् = बहुत सारे ।
अवाच्यवादान् = न कहने योग्य वचनों को ।
वदिष्यन्ति = कहेंगे ।
ततः = उससे ।
दुःखतरम् = अधिक दुःख की बात ।

व्याकरण—अहिताः = न + हित, अहित । प्रथमा वि० बहुवचन ।
निन्दन्तः = निन्दन् + शतृ (अत्), पुं० प्रथमा बहुवचन ।
निन्दन्—निन्दन्तौ—निन्दन्तः आदि ।
अवाच्यवादान् = अवाच्याश्च ते वादाश्च, तान् (कर्म० समास)
√वद + (कहना) लृट् लकार ।

वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
वदिष्यसि	वदिष्यथः	वदिष्यथ
वदिष्यामि	वदिष्यावः	वदिष्यामः ।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।।३७।।

अन्वय – वा हतः स्वर्गम् प्राप्स्यसि, वा जित्वा महीम् भोक्ष्यसे । तस्मात् (हे) कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः उत्तिष्ठ ।

विषय-संकेत—युद्ध में मरने पर भी और जीतने पर भी अच्छा ही होगा।

अनुवाद—अथवा, मृत होने पर (तुम) स्वर्ग को प्राप्त करोगे अथवा (युद्ध में जीतकर तुम) पृथ्वी का भोग करोगे । उस कारण से 'हे कुन्तीपुत्र (अर्जुन) (तुम) युद्ध के लिए निश्चय किये हुए होकर, उठ खड़े होओ ।

शब्दार्थ—हतः=मरा हुआ ।
स्वर्गं प्राप्स्यसि=स्वर्ग को प्राप्त करोगे ।
वा=अथवा
जित्वा=जीतकर
महीं भोक्ष्यसे=पृथ्वी का (तुम) भोग करोगे ।
तस्मात्=उस कारण से ।
कौन्तेय=हे कुन्तीपुत्र (अर्जुन)
युद्धाय=युद्ध (करने के) लिए
कृतनिश्चयः=किये हुये निश्चय वाले (तुम)।
उत्तिष्ठ=खड़े हो जाओ ।

व्याकरण—हतः=हन्+क्त पु० एकवचन ।
प्राप्स्यसि=प्र+आप्+लृट् लकार, मध्यम पु०, एकवचन ।
जित्वा=√जि+(जीतना)+क्त्वा ।
भोक्ष्यसे=√भुज् (भोगना)+लृट् लकार, मध्यम पु० ।
ए० व० ।
कौन्तेय=कुन्ती+ढक् (अपत्य अर्थ में तद्धित प्रत्यय) ।
कृतनिश्चयः=कृतः निश्चयः येन सः (बहु० समास) ।
उत्तिष्ठ=उत्+√स्था, लोट् लकार, मध्यम पु०, ए० वचन ।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।३८।।

अन्वय—सुख-दुःखे, लाभालाभौ, जयाजयौ समे कृत्वा ततः युद्धाय युज्यस्व (एवम् त्वम्) पापम् न अवाप्स्यसि ।

विषय-संकेत—युद्ध करने पर, पाप से बचने का कथन—

अनुवाद—(हे अर्जुन) सुख और दुःख को, लाभ और अलाभ (हानि) को, (और) जय और अजय (पराजय) को (तू) समान करके (मान), और उसके बाद युद्ध में संलग्न हो जा। (इस प्रकार तू) पाप को प्राप्त नहीं करेगा।

शब्दार्थ—सुख-दुःखे = सुख और दुःख को ।
लाभ अलाभौ = लाभ और हानि को ।
जय-अजयौ = जीत और हार को ।
समे कृत्वा = समान मानकर ।
ततः = उसके पश्चात् ।
युद्धाय युज्यस्व युद्ध के लिए संलग्न हो जा ।
पापम् = पाप को ।
न अवाप्स्यसि तू नहीं प्राप्त करेगा ।

व्याकरण—सुख-दुःखे = सुखं च दुःखं च (द्वन्द्व समास), नपुंसक लि० द्वि० विभक्ति, द्वि० वचन ।
लाभालाभौ = लाभश्च अलाभश्च (द्वन्द्व समास) पुंल्लिङ्ग, द्वि० वि० द्विव० ।
जयाजयौ—जयश्च अजयश्च (द्वन्द्व समास) पुंल्लिङ्ग, द्वि० वि० द्वि० वचन ।
कृत्वा = √कृ + क्त्वा ।
ततः = तद् + तसिल् (तस्) अव्यय ।
युज्यस्व = √युज् (लगना) + लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एक वचन ।
अवाप्स्यसि = अव + √आप् + (प्राप्त करना) लृट् लकार, मध्यम पु०, ए० वचन ।
अन्यरूप इस प्रकार होंगे—
अवाप्स्यति-अवाप्स्यतः-अवाप्स्यन्ति आदि ।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

अन्वय—(हे) पार्थ ! एषा बुद्धि ते सांख्ये अभिहिता, तु इमाम् योगे शृणु। यया बुद्ध्या युक्तः (त्वम्) कर्मबन्धम् प्रहास्यसि ।

विषय-संकेत—यहाँ से आगे 'निष्काम कर्मयोग' का कथन है ।

अनुवाद—हे अर्जुन ! यह (कही गयी) बुद्धि (विचार) तेरे लिए सांख्य के विषय में कही गयी है । किन्तु, इसी (बुद्धि) को (तू) (अब) योग (निष्काम कर्मयोग) के विषय में सुन । जिस (निष्काम कर्मयोग की) बुद्धि से युक्त हुआ (तू) (सांसारिक) कर्मों के बन्धन को छोड़ देगा ।

शब्दार्थ—पार्थ=पृथा का पुत्र (अर्जुन) ।
एषा—यह ।
बुद्धिः=बुद्धि (विचार) ।
सांख्ये=सांख्य के विषय में ।
अभिहिता=कही गयी है ।
तु=किन्तु ।
इमाम्=इस (बुद्धि) को ।
योगे=योग (निष्काम कर्मयोग) के विषय में ।
शृणु=सुन ।
यया बुद्ध्या=जिस बुद्धि से ।
युक्तः=युक्त हुआ (तू) ।
कर्मबन्धम्=कर्मों के बन्धन को ।
प्रहास्यसि=छोड़ देगा ।

व्याकरण—अभिहिता=अभि+√धा (कहना)+क्त, स्त्रीलिंग ।
शृणु=श्रु+लोट् लकार के रूप ।

शृणोतु-शृणुतात्	शृणुताम्	शृण्वन्तु
शृणु-शृणुतात्	शृणुतम्	शृणुत
शृण्वानि	शृण्वाव	शृण्वाम ।

40

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

अन्वय—इह, अभिक्रमनाशः न अस्ति, (च) प्रत्यवायः (अपि) न विद्यते । अस्य धर्मस्य स्वल्पम् अपि महतः भयात् त्रायते ।

विषय-संकेत—निष्काम कर्म करने का माहात्म्य—

अनुवाद—(हे पार्थ), इस (निष्कामकर्मयोग) में आरम्भ (अर्थात् बीज) का नाश नहीं होता है । (और) विपरीत फल (रूप दोष) (भी) नहीं होता है । (इसलिए) इस (निष्काम कर्मयोग रूप) धर्म का थोड़ा-सा भी (साधन) बड़े भय से (अर्थात् जन्म-मृत्यु रूप भय से) बचा देता है ।

शब्दार्थ—इह = इस (निष्काम कमयोग) में ।
अभिक्रमनाशः = अभिक्रम (बीजरूप मूल कर्म) का नाश ।
न अस्ति = नहीं है (नहीं होता है) ।
प्रत्यवायः = विपरीत (उलटा) फल रूप दोष ।
न विद्यते = नहीं है ।
अस्य धर्मस्य = इस धर्म का ।
स्वल्पम् अपि = थोड़ा-सा भी (साधन) ।
महतः भयात् = बड़े भय से ।
त्रायते = बचा लेता है, रक्षा कर लेता है ।

व्याकरण—अभिक्रमनाशः = अभिक्रमस्य नाशः (तत्पुरुष समास) ।
अस्ति = √अस् (होना) लट् लकार का रूप, जैसे—

अस्ति	स्तः	सन्ति ।
असि	स्थः	स्थ
अस्मि	स्वः	स्मः ।

त्रायते = √त्रैं (रक्षा करना) लट् लकार । रूप इस प्रकार होते हैं ।

त्रायते	त्रायेते	त्रायन्ते
त्रायसे	त्रायेथे	त्रायध्वे इत्यादि

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।।४१।।

अन्वय—(हे) कुरुनन्दन ! इह व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका हि । च अव्यवसायिनाम् बुद्धयः बहुशाखाः अनन्ताः (भवन्ति) ।

विषय-संकेत—निष्कामकर्मयोग के लिए समतायुक्त बुद्धि को प्राप्त करने का उपाय ।

अनुवाद—हे अर्जुन, इस (कल्याण वाले मार्ग में) निश्चयात्मक बुद्धि एक ही होती है । और, अनिश्चयात्मक ज्ञान वाले (अज्ञानी) (पुरुषों) की बुद्धियाँ बहुत भेदों वाली होती हुई अनन्त होती हैं ।

शब्दार्थ—कुरुनन्दन = कुरु को प्रसन्न करने वाला अर्थात् अर्जुन ।
इह = इस निष्कामकर्मयोग रूपी (कल्याण मार्ग में)
व्यवसायात्मिका = निश्चय ज्ञान वाली
बुद्धिः = बुद्धि
एका हि = एक होती है ।
अव्यवसायिनाम् = अज्ञानी (अनिश्चयात्मक ज्ञान वाले) लोगों की।
बुद्धयः = बुद्धियाँ ।
बहुशाखाः = बहुत भेद वाली ।
अनन्ताः = अनन्त अर्थात् अनेक ।

व्याकरण—कुरुनन्दनः = कुरोः नन्दनः, षष्ठी तत्पुरुष समास ।
बुद्धिः = √बुध् + क्तिन् । रूप इस प्रकार होंगे—
बुद्धिः–बुद्धी–बुद्धयः = आदि स्त्रीलिंग
अव्यवसायिनाम् = व्यवसाय + इन् = व्यवसायिन्
न + व्यवसायिन् = अव्यवसायिन् ।
पुंल्लिंग में रूप होंगे—
अव्यवसायी अव्यवसायिनौ अव्यवसायिनः
अव्यवसायिनम् " "
(षष्ठी विभक्ति बहुवचन में अव्यवसायिनाम्)

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥

अन्वय—(हे) पार्थ ! वेदवादरताः अन्यत् न अस्ति, इति वादिनः अविपश्चितः याम् इमाम् पुष्पितां वाचम् प्रवदन्ति (तेषाम् व्यवसायात्मिका बुद्धिः न विधीयते) ।

विषय-संकेत—अव्यवसायी पुरुषों की बुद्धियों की अनन्तता का कारण—

अनुवाद—हे अर्जुन, वेद के (कर्मफलों को देने वाले) वादों में निरत, (इससे भिन्न) अन्य (कुछ) नहीं है, ऐसा कहने वाले, अविद्वान् लोग, जिस, इस पुष्पित (दिखावटी शोभायुक्त) बात को कहते हैं (उनके पास निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है ।)

शब्दार्थ—वेदवादरताः=वेद सम्बन्धी कर्मों के फल को प्रदान करने वाले वादों में लगे हुए ।
अन्यत् न अस्ति=इसके (स्वर्ग आदि फल देने वाले कर्मों के) अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।
अविपश्चितः=अविद्वान् लोग, अज्ञानी लोग ।
पुष्पिताम्=पुष्पों वाली अर्थात् ऊपर से सुन्दर दिखायी देने वाली (बात) ।

व्याकरण—वेदवादरताः=वेदवादे+रताः=तत्पुरुष समास ।
वादिनः='वादिन्' शब्द का प्रथमा वि० बहुवचन (वाद+इन्) ।
अविपश्चितः=न+विपश्चित्, अविपश्चित् ।
रूप इस प्रकार होंगे—
अविपश्चित्-अविपश्चितौ-अविपश्चितः इत्यादि ।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।।४३।।

अन्वय—(हे पार्थ) कामात्मानः स्वर्गपराः, जन्मकर्मफलप्रदाम्, भोगैश्वर्यगतिम् प्रति क्रियाविशेषबहुलाम् (याम् इमाम् पुष्पिताम् वाचम् प्रवदन्ति)। (तेषाम् व्यवसायात्मिका बुद्धिः न विधीयते ।)

विषय-संकेत—अव्यवसायी पुरुषों की बुद्धियों के अनन्त होने के हेतु का कथन—

अनुवाद—(हे अर्जुन) कामनाओं वाले लोग, स्वर्गपरायण होते हुए जन्म रूप कर्मों के फल को देने वाली, भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए क्रिया-विशेष की बहुलता वाली (अत्यधिक कर्मकाण्ड के विस्तार वाली) (इस, जिस पुष्पित वाणी को कहते हैं) (उनके पास निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है ।)॥

शब्दार्थ—कामात्मानः = कामनाओं वाले (सकामी) पुरुष ।

स्वर्गपराः = स्वर्ग-परायण (अर्थात् स्वर्ग की इच्छा करने वाले)।

जन्म-कर्मफलप्रदाम् = (अच्छे जन्म रूप कर्मफल को देने वाली)।

भोगैश्वर्यगतिम् प्रति = भोग तथा ऐश्वर्य के लिए ।

क्रियाविशेषबहुलाम् = विशेष-विशेष क्रियाओं (कर्मकाण्ड) की बहुलता वाली ।

व्याकरण—स्वर्गपराः = स्वर्गः परः (पुरुषार्थः) येषाम् ते (बहुव्रीहि समास) ।

जन्मकर्मफलप्रदाम् = कर्मणः फलम्, कर्मफलम् । जन्म एव कर्मफलम् तत् प्रददाति, या सा, ताम् (वाचम्) ।

क्रियाविशेषबहुलाम् = क्रियाणां विशेषाः, क्रियाविशेषाः, क्रियाविशेषैः बहुला या सा, ताम् ।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

अन्वय—(हे पार्थ) तया अपहृतचेतसाम्, भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् (अव्यवसायिनाम्) समाधौ व्यवसायात्मिका: बुद्धिः न विधीयते) ।

विषय-संकेत—अव्यवसायी पुरुषों की बुद्धियों के अनन्त होने के हेतु का कथन—

अनुवाद—(हे अर्जुन) उस (दिखावटी शोभा युक्त वाणी) से हरे गये चित्त वालों के (तथा) भोग और ऐश्वर्य में आसक्त रहने वालों के अन्तःकरण में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है ।

शब्दार्थ—तया = उससे
अपहृतचेतसाम् = हरे गये चित्त वालों के ।
भोग-ऐश्वर्य-प्रसक्तानाम् = भोग तथा ऐश्वर्य में आसक्त रहने वालों के ।
समाधौ = अन्तःकरण में (समाधि शब्द का विशेष अर्थ है) ।
व्यवसायात्मिका = निश्चयात्मक
बुद्धिः = बुद्धि
न विधीयते = नहीं होती है ।

व्याकरण—तया = 'तद्' सर्वनाम शब्द का स्त्रीलिंग में, तृतीया विभक्ति, एकवचन । रूप इस प्रकार होते हैं—
सा ते ताः । ताम् ते ताः ।
तया ताभ्याम् ताभिः । तस्यै ताभ्याम् ताभ्यः ।
तस्याः ताभ्याम् ताभ्यः । तस्याः तयोः तासाम् ।
तस्याम् तयोः तासु ।
समाधौ = 'समाधि' शब्द का, सप्तमी वि० एकवचन ।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

अन्वय—(हे) अर्जुन ! वेदाः त्रैगुण्यविषयाः (सन्ति) (परम् त्वम्) निस्त्रैगुण्यः निर्द्वन्द्वः, नित्यसत्त्वस्थः, निर्योगक्षेमः (च) आत्मवान् भव ।

विषय-संकेत—श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को त्रिगुण-रहित होने की प्रेरणा—

अनुवाद—हे अर्जुन, वेद तीनों गुणों (सत, रज और तम) के परिणाम रूप इस संसार को विषय बनाने वाले हैं अर्थात् (संसारी) हैं (किन्तु तू) असंसारी (बन) और, सुख-दुख आदि द्वन्द्वों से रहित, नित्य वस्तु (परमात्मा) में स्थित, योग-क्षेम को चाहने वाला तथा आत्मपरायण हो ।

शब्दार्थ—वेदाः=सभी वेद

त्रैगुण्य-विषयाः=त्रैगुण्य अर्थात् त्रिगुण से बने संसार के विषय वाले हैं ।

निस्त्रैगुण्यः=त्रैगुण्य अर्थात् त्रिगुण से बने संसार से रहित ।

निर्द्वन्द्वः=सुख-दुःख, आदि दो-दो के समूह को द्वन्द्व कहा जाता है । उनसे परे (रहित) ।

नित्यसत्त्वस्थः=नित्यवस्तु (परमात्मा) में स्थित ।

निर्योगक्षेमः=योग से तात्पर्य है अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम से तात्पर्य है, प्राप्त वस्तु की रक्षा । तुम योग और क्षेम को चाहने वाले न बनो ।

आत्मवान्=आत्म (परमात्म) परायण ।

व्याकरण—वेदाः=√'विद्' (जानना) से घञ् अथवा अच् प्रत्यय करने पर 'वेद' शब्द बनता है । 'वेद' शब्द का पुंलिङ्ग, प्रथमा, बहुवचन । ये वेद चार हैं— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ।

निर्द्वन्द्वः=निर् + द्वन्द्वः, निर्गतो द्वन्द्वो यस्मात् सः । बहुव्रीहि समास है ।

आत्मवान्=आत्मन् + वतुप् (वत्) । आत्मवत्, पुंलिङ्ग, प्रथमा, एकवचन ।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

अन्वय—सर्वतः संप्लुतोदके (प्राप्ते सति), उदपाने (मनुष्यस्य) यावान् अर्थः (भवति), (ब्रह्मणि प्राप्ते सति) विजानतः ब्राह्मणस्य सर्वेषु वेदेषु तावान् (एव अर्थः) ।

विषय-संकेत—वेदों के तत्व को जान लेने पर, ज्ञानी पुरुष का वेदों से प्रयोजन नहीं रहता ।

अनुवाद—सब ओर से अच्छी प्रकार से भरे हुए जलाशय के (प्राप्त हो जाने पर) उथले जलवाले सरोवर में (मनुष्य का) जितना प्रयोजन रह जाता है, ब्रह्म को प्राप्त कर लेने पर) अच्छी प्रकार से ब्रह्म को जानते हुए का, ब्राह्मण का, सब वेदों में (भी) उतना (हि प्रयोजन रह जाता है ।)

शब्दार्थ—सर्वतः = सब ओर से

संप्लुतोदके = अच्छी प्रकार भरे हुए जल वाले (सरोवर के)

उदपाने = थोड़े जल वाले

यावान् अर्थः = जितना प्रयोजन (रह जाता है) ।

विजानतः = अच्छी प्रकार से जानते हुए का ।

तावान् = उतना (ही) ।

व्याकरण—सर्वतः = सर्व + तसिल् (तस्) तद्धित प्रत्यय ।

यावान् = यद् + वतुप्, 'यावत्' का पुंल्लिङ्ग एकवचन । स्त्रीलिंग म 'यावती' और नपुं० लिंग में 'यावत्' ।

तावान् = इसी प्रकार तद् + वतुप् = 'तावत्' से पुं० तावान् । स्त्रीलिंग 'तावती', नपुं० लिङ्ग 'तावत्' ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

अन्वय—(हे पार्थ) कर्मणि (एव) ते अधिकारः, फलेषु कदाचन मा । (अतः त्वम्) कर्मफलहेतुः मा भूः (च) अकर्मणि (अपि) ते सङ्ग मा अस्तु ।

विषय-संकेत—निष्काम भाव से कर्म करने की प्रेरणा ।

अनुवाद—(हे अर्जुन), कर्म (करने) में ही तेरा अधिकार है, (कर्मों के) फलों में कभी नहीं । (इसलिए तू) कर्मफल के हेतु (कर्म करने वाला) मत हो (और) कर्म न करने में (भी) तेरी आसक्ति न होवे (तू ऐसा बन) ।

शब्दार्थ—ते = तेरा

कर्मणि एव = कर्म (करने में) ही ।

अधिकारः = अधिकार है ।

फलेषु = (कर्मों के) फलों में ।

कदाचन मा = कभी नहीं ।

कर्मफलहेतुः = कर्म के फल का हेतु ।

मा भूः = मत होओ ।

अकर्मणि = कर्म न करने में ।

सङ्गः = आसक्ति, रुचि ।

मा अस्तु = नहीं होवे ।

व्याकरण—ते = युष्मद् शब्द के षष्ठी विभक्ति, एकवचन में 'तव' और 'ते' दो रूप बनते हैं ।

कर्मणि = 'कर्मन्' शब्द का सप्तमी विभक्ति, एकवचन कर्मणि— कर्मणोः—कर्मसु ।

अकर्मणि = न + कर्मणि (नञ् तत्पुरुष समास) ।

मा भूः = 'मा' के कारण 'अभूत्' आदि लुङ् लकार के रूपों 'अ' नहीं लगता है । मध्यम पुरुष, एकवचन ।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।४८।।

अन्वय—(हे) धनंजय ! सङ्गम् त्यक्त्वा, सिद्ध्यसिद्ध्योः समः भूत्वा, योगस्थः कर्माणि कुरु । (यतोहि) समत्वम् योगः उच्यते ।

विषय-संकेत—सफलता-असफलता में समभाव रहकर कर्तव्य कर्म करना ही योग है ।

अनुवाद—हे अर्जुन, आसक्ति को त्यागकर, सफलता और असफलता में समान रहकर योग में स्थित हुआ (तू अपने) कर्मों को कर । (क्योंकि) समभाव ही योग कहा जाता है ।

शब्दार्थ—धनंजय=धन को जीतने वाला (अर्जुन) सम्बोधन ।
सङ्गम्=आसक्ति को
त्यक्त्वा=त्यागकर, छोड़कर
सिद्ध्यसिद्ध्योः=सिद्धि (सफलता) और असिद्धि (असफलता में)
समः=समान (भाव) वाला
भूत्वा=होकर
योगस्थः=योग (समभाव) में स्थित हुआ ।
कर्मणि कुरु=कर्मों को कर
समत्वम्=समभाव
योगः=योग
उच्यते=कहा जाता है ।

व्याकरण—धनंजयः=धन (मुम्)+जि+खच्=धनंजय ।
धनं जयति, यः सः धनंजयः ।
त्यक्त्वा=√त्यज्+क्त्वा ।
भूत्वा √भू+क्त्वा ।
समत्वम्=सम+त्वल् (त्व), नपुं० लि० एकवचन ।
योग=युज्+घञ् ।
कर्मणि='कर्मन्' शब्द का द्वि० वि, बहुवचन ।
कर्म—कर्मणि—कर्माणि (प्र० तथा द्वि०)

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।।४९।।

अन्वय—(हे) धनंजय ! बुद्धियोगात्, कर्म दूरेण अवरम् (अतः त्वम्) बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ, हि फलहेतवः कृपणाः (सन्ति) ।

विषय-संकेत—अर्जुन को, समत्व-बुद्धियोग की शरण लेने की प्रेरणा ।

अनुवाद—हे धनञ्जय (अर्जुन) बुद्धियोग की दृष्टि से (सकाम) कर्म बहुत ही तुच्छ है, (इसलिए तू) बुद्धि-योग की (ही) शरण की इच्छा कर, क्योंकि (कर्म) के फल की इच्छा करने वाले दीन होते हैं ।

शब्दार्थ—बुद्धि-योगात् = बुद्धि के योग से (अर्थात् निष्काम कर्म योग की दृष्टि से,
कर्म = (सकाम) कर्म ।
दूरेण अवरम् = बहुत ही तुच्छ है ।
धनंजय = अर्जुन (सम्बोधन) ।
बुद्धौ = बुद्धि-योग में (समत्व बुद्धियोग में) ।
शरणम् अन्विच्छ = आश्रय की इच्छा कर ।
फलहेतवः = फल के हेतु से कर्म करने वाले ।
कृपणाः = (अत्यन्त ही) दीन होते हैं ।

व्याकरण—बुद्धियोगात् = बुद्धेः योगः = बुद्धियोगः तस्मात् ।
(हेतु में पञ्चमी है ।)
अन्विच्छ = अनु + इच्छ = अन्विच्छ, लोट्, मध्यम पु० एकवचन
फलहेतवः = फलस्य हेतुः, फलहेतु, प्रथमा बहुवचन ।
कृपणाः = 'कृपण' का प्रथमा विभक्ति, बहुवचन । कृपणः कृपणौ कृपणाः इत्यादि अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द के समान रूप होते हैं ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

अन्वय—(हे धनंजय) इह, बुद्धियुक्तः सुकृत-दुष्कृते उभे (एव) जहाति तस्मात् (त्वम्) योगाय युज्यस्व (यतोहि) योगः कर्मसु कौशलम् ।

विषय संकेत—समत्व बुद्धियोग से ही कर्मों में कुशलता प्राप्त होती है ।

अनुवाद—(हे अर्जुन), इस संसार में बुद्धि-योगी अच्छे-बुरे दोनों ही (प्रकार के कर्मों) को छोड़ देता है (अर्थात् उनमें आसक्ति नहीं रखता है) इस कारण से (तू) योग (समत्वबुद्धियोग) के लिए संलग्न हो जा । (क्योंकि वस्तुतः) योग ही कर्मों में कुशलता है (अर्थात् समत्वबुद्धियोग से ही किये गये कर्मों में कुशलता प्राप्त होती है, अन्यथा सफलता-असफलता के भय से हम उन कर्मों को कुशलतापूर्वक नहीं कर पाते हैं ।)

शब्दार्थ—इह = इस संसार में, इस लोक में ।

बुद्धियुक्तः = बुद्धियोगी (समत्वबुद्धि से कर्म करने वाला) ।
सुकृत-दुष्कृते = अच्छे (पुण्य) और बुरे (पाप) दोनों ही ।
उभे = दोनों को ।

जहाति = छोड़ देता है, त्याग देता है ।
योगाय युज्यस्व = समत्वबुद्धियोग के लिए तत्पर हो ।
योगः कर्मसु कौशलम् = समत्वबुद्धियोग ही कर्मों में कुशलता है ।

व्याकरण—बुद्धियुक्तः = बुद्धि + √युज् + क्त = पुं० प्रथमा एकवचन ।
सुकृत-दुष्कृते = सुकृतं च दुष्कृतं च = सुकृतदुष्कृते (द्वन्द्व समास) द्वितीया विभक्ति द्विवचन ।

जहाति = √ओहाक् (हा) धातु, लट् लकार में—जहाति जहीतः जहति जैसे रूप होते हैं ।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥५१॥

अन्वय—हि बुद्धियुक्ताः मनीषिणः कर्मजम् फलम् त्यक्त्वा, जन्मबन्ध-विनिर्मुक्ताः (सन्तः) अनामयम् पदम् गच्छन्ति ।

विषय-संकेत—समत्वबुद्धियोगी पुरुष परम पद को प्राप्त होते हैं ।

अनुवाद—क्योंकि, बुद्धियोगी ज्ञानी लोग कर्मों से उत्पन्न फल को त्यागकर (परिणामस्वरूप) जन्म के बन्धन से मुक्त हुए, दुःखरहित (परम) पद को प्राप्त होते हैं ।

शब्दार्थ—**बुद्धियुक्ताः** = बुद्धियोगी जन (समत्वबुद्धि वाले लोग) ।
मनीषिणः = मनीषी लोग (ज्ञानी लोग) ।
कर्मजं फलम् = कर्मों से उत्पन्न फल अर्थात् जन्म को ।
त्यक्त्वा = छोड़कर, त्यागकर ।
जन्मबन्ध-विनिर्मुक्ताः = जन्म के बन्धन से छूटे हुए ।
अनामयम् = दुःख (रोग आदि) रहित ।
पदम् = पद को (अमृत पद, मोक्ष पद को) ।
गच्छन्ति = प्राप्त होते हैं, पहुँचते हैं ।

व्याकरण—**बुद्धियुक्ताः** = बुद्धि + √युज् + क्त, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन पुं० ।
मनीषिणः = मनीषा + इन् = मनीषिन् । पुंल्लिङ्ग में रूप

मनीषी	मनीषिणौ	मनीषिणः ।
मनीषिणम्	"	मनीषिणः ।
मनीषिणा	मनीषिभ्याम्	मनीषिभिः ।
मनीषिणे	"	मनीषिभ्यः ।
मनीषिणः	"	" ।
मनीषिणः	मनीषिणोः	मनीषिणाम् ।
मनीषिणि	"	मनीषिषु ।

'इन्' प्रत्यय वाले अन्य शब्दों—करिन् (करी) गुणिन् (गुणी) आदि के रूप भी इसी प्रकार होते हैं ।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।५२।।

अन्वय—(हे अर्जुन !) यदा ते बुद्धिः मोहकलिलम् व्यतितरिष्यति, तदा (त्वम्) श्रोतव्यस्य च श्रुतस्य निर्वेदम् गन्तासि ।

विषय-संकेत—मोह का त्याग होने पर ही कर्मों के फल से वैराग्य होता है ।

अनुवाद—हे अर्जुन, जब तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को बिल्कुल तर जाएगी, तब (तू) सुनने योग्य और सुने हुए के वैराग्य को प्राप्त कर जायेगा ।

शब्दार्थ—**यदा**=जब ।

ते बुद्धिः=तेरी बुद्धि ।

मोहकलिलम्=मोह (आसक्ति) रूप कलिल (कीचड़) दलदल ।

व्यतितरिष्यति=विशेष रूप से तर जायेगी ।

तदा=तब (तू) ।

श्रोतव्यस्य=सुनने योग्य (शास्त्र आदि के) ।

श्रुतस्य=सुने हुए (शास्त्र आदि के) ।

निर्वेदम्=वैराग्य को ।

गन्तासि=पहुँच जायगा, प्राप्त हो जायगा ।

व्याकरण—**यदा**=यद् + दा (तद्धित प्रत्यय) । इसी प्रकार ।

तदा=तद् + दा (”) इसी प्रकार ।

किम् + दा=कदा, सर्व + दा, सर्वदा आदि ।

बुद्धिः=√बुध् + क्तिन्=बुद्धि (स्त्रीलिङ्ग में क्तिन्)

गन्तासि=√गम् + लुट् लकार के रूप—

गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः ।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

अन्वय—(अर्जुन), यदा ते श्रुतिविप्रतिपन्ना बुद्धिः समाधौ अचला (च) निश्चला स्थास्यति तदा (त्वम्) योगम् अवाप्स्यसि ।

विषय-संकेत—परमात्मा में बुद्धि के स्थिर हो जाने पर ही योग की प्राप्ति का निर्देश ।

अनुवाद—(हे अर्जुन) जब तेरी (अनेक शास्त्रों और सिद्धान्तों को) सुनने से व्याकुल हुई बुद्धि समाधि (परमात्मा) में अचल (और) स्थिर हुई स्थित हो जाएगी, तब (तू) योग (समत्वबुद्धि) को प्राप्त कर लेगा ।

शब्दार्थ—यदा = जब ।

श्रुतिप्रतिपन्ना = सुनी गयी बातो से व्याकुल हुई ।

बुद्धिः = बुद्धि ।

समाधौ = आत्मा में (परमात्मा) में ।

अचला = अचल (न चलती हुई) ।

निश्चला = स्थिर ।

स्थास्यति = ठहर जायेगी, स्थित हो जायेगी ।

तदा = तब ।

योगम् = समत्वबुद्धि योग को ।

अवाप्स्यसि = प्राप्त करेगा ।

व्याकरण—श्रुतिविप्रतिपन्ना = श्रुतिभिः विप्रतिपन्ना (वि + प्रति + पद + क्त) ।

बुद्धिः = √बुध् + क्तिन् (स्त्रीलिंग में कृत् प्रत्यय) ।

समाधौ = समाधि का सप्तमी वि० एकवचन ।

स्थास्यति = √स्था + लृट लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

अवाप्स्यसि = अव + √आप् + लृट लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन

अवाप्स्यति	अवाप्स्यतः	अवाप्स्यन्ति

अवाप्स्यसि—इत्यादि ।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।५४।।

अन्वय---(हे) केशव ! समाधिस्थस्य (च) स्थितप्रज्ञस्य का भाषा ? किम् प्रभाषेत ? (सः) किम् आसीत् च किम् व्रजेत ?

विषय-संकेत--- अर्जुन का स्थितधीः 'स्थितप्रज्ञ' के विषय में प्रश्न---

अनुवाद---हे केशव (कृष्ण) समाधि में स्थित (और) स्थितप्रज्ञ (पुरुष) की क्या परिभाषा है ? स्थितधी (पुरुष) कैसे बोलता है, कैसे बैठता (और) कैसे चलता है ?

(अर्थात् स्थितप्रज्ञ पुरुष का बोलना, बैठना और चलना कैसा होता है ?)

शब्दार्थः---**केशव** = विष्णु के अवतार कृष्ण के लिए सम्बोधन है ।
(व्युत्पत्ति है---केश + व = अच्छे बालों वाला)
समाधिस्थस्य = समाधि (परमात्मा) में स्थित होने वाले को ।
स्थितप्रज्ञस्य = स्थित प्रज्ञा वाले की ।
स्थितधीः = स्थित बुद्धि वाला (पुरुष) ।
प्रभाषेत = बोलता है (भाषते के स्थान पर प्रयुक्त) ।
आसीत = बोलता है (आस्ते के स्थान पर प्रयुक्त) ।
व्रजेत = चलता है (व्रजते के स्थान पर प्रयुक्त) ।

व्याकरण---समाधिस्थस्य = समाधौ तिष्ठति, यः सः, समाधिस्थ, समाधिस्थ का षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।
स्थितप्रज्ञस्य = स्थिता प्रज्ञा यस्य सः स्थितप्रज्ञः । स्थितप्रज्ञ का षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।
स्थितधीः = स्थिता धीः, यस्य सः, स्थितधीः (बहुव्रीहि समास)
प्रभाषेत = प्र + √भाष् + विधिलिङ्ग लकार में, प्रथम पुरुष, एकवचन (आत्मनेपद) ।

श्रीकृष्ण उवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।।

अन्वय—(हे) पार्थ ! यदा (पुरुषः) मनोगतान् सर्वान् कामान् प्रजहाति, तदा आत्मना आत्मनि एव तुष्टः (सः पुरुषः) स्थितप्रज्ञः उच्यते ।

विषय-संकेत—'स्थितप्रज्ञ' के विषय में कृष्ण का उत्तर अथवा 'स्थितप्रज्ञ' का लक्षण ।

अनुवाद—हे पार्थ (अर्जुन) जब (यह पुरुष) मन में आयी हुई सब कामनाओं को भली प्रकार छोड़ देता है, तब आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट हुआ (यह पुरुष) 'स्थितप्रज्ञ' कहा जाता है ।

शब्दार्थ—पार्थ = अर्जुन (पृथा का पुत्र) ।
यदा = जब ।
मनोगतान् = मन में आयी हुई ।
सर्वान् = सब ।
कामान् = कामनाओं को ।
प्रजहाति = भली प्रकार (बिल्कुल ही) छोड़ देता है ।
तदा = तब ।
आत्मना = आत्मा के द्वारा ।
आत्मनि = (परम) आत्मा में ।
तुष्टः = तुष्ट हुआ, सन्तुष्ट हुआ ।
स्थितप्रज्ञः = स्थितप्रज्ञ ।
उच्यते = कहा जाता है ।

व्याकरण—पार्थ = पृथा + अण् (अपत्य अर्थ में तद्धित प्रत्यय) ।
मनोगतान् = मनस् + (गम् + क्त = गत), मनस् + गत, सन्धि होकर मनोगत । द्वितीया विभक्ति का बहुवचन का रूप ।
आत्मना = 'आत्मन्' का तृ० वि० एकवचन ।
आत्मनि = 'आत्मन्' का सप्तमी विभक्ति, एकवचन ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

अन्वय—(हे पार्थ), दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः (च) सुखेषु विगतस्पृहः, च वीतरागभयक्रोधः मुनिः स्थितधीः उच्यते ।

विषय-संकेत—'स्थितप्रज्ञ' के विषय में कृष्ण का उत्तर अथवा स्थितप्रज्ञ का लक्षण ।

अनुवाद—(हे अर्जुन ! दुःखों से अक्षुब्ध मन वाले (और) सुखों में समाप्त हुई इच्छा वाले (तथा) विनष्ट हुए राग, भय और क्रोध वाले मुनि को स्थितबुद्धि (स्थितप्रज्ञ) कहा जाता है ।

शब्दार्थ— दुःखेषु=दुःखों में ।

अनुद्विग्नमनाः=जो उद्विग्न मन वाला नहीं है अर्थात् अक्षुब्ध मन वाला ।

सुखेषु=सुखों में ।

विगतस्पृह=समाप्त हुई इच्छा वाला ।

वीतरागभयक्रोधः=विनष्ट हुए राग (आसक्ति), भय और क्रोध वाला ।

मुनिः=मुनि (पुरुष) ।

स्थितधीः=स्थितबुद्धि (स्थितप्रज्ञ) ।

उच्यते=कहा जाता है ।

व्याकरण—अनुद्विग्नमनाः=न+उद्विग्न+अनुद्विग्न । अनुद्विग्न मनः यस्य सः ।

विगतस्पृहः=वि+गम्+क्त—विगत । स्त्रीलिङ्ग में विगता । विगता स्पृहा यस्य सः । बहुव्रीहि समास ।

वीतरागभयक्रोधः=वीताः राग-भय-क्रोधाः यस्य सः । बहुव्रीहि समास ।

स्थितधीः=स्थिता धीः यस्य स । बहुव्रीहि समास ।

उच्यते=√वच् (उच्)+लट् लकार के रूप ।

उच्यते	उच्येते	उच्यन्ते
उच्यसे	उच्येथे	उच्यध्वे
उच्ये	उच्यावहे	उच्यामहे ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

अन्वय—(हे पार्थ), यः (पुरुषः) सर्वत्र अनभिस्नेहः (अतएव) तद्-तद् शुभाशुभम् प्राप्य न अभिनन्दति (च) न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।

विषय-संकेत—'स्थितप्रज्ञ' के विषय में कृष्ण का उत्तर या 'स्थितप्रज्ञ' का लक्षण ।

अनुवाद—(हे अर्जुन), जो (पुरुष) सब विषयों में आसक्तिरहित है (इसलिए) उस-उस शुभ (अच्छी) या अशुभ (बुरी) (वस्तु) को प्राप्त करके न (तो) प्रसन्न होता है (और) न द्वेष करता है, उस (ही) की प्रज्ञा प्रतिष्ठित (कही गयी) है ।

शब्दार्थ— यः = जो ।
सर्वत्र = सब विषयों में ।
अनभिस्नेहः = अन-स्नेह वाला है अर्थात् स्नेहरहित है ।
तत्-तत् = उस-उस ।
शुभाशुभम् = शुभ और अशुभ को ।
प्राप्य = प्राप्त करके ।
न अभिनन्दति = न प्रसन्न होता है ।
न द्वेष्टि = न द्वेष करता है ।
तस्य = उसकी ।
प्रज्ञा = बुद्धि ।
प्रतिष्ठिता = प्रतिष्ठित है, स्थित है ।

व्याकरण—सर्वत्र = सर्व + त्रल् तद्धित प्रत्यय = सर्वत्र । इसी प्रकार—,
इदम् से अत्र, तद् से तत्र, यद् से यत्र
और किम् से कुत्र बनता है ।
शुभाशुभम् = शुभं च अशुभं च, तयोः समाहारः । (द्वन्द्व समास)
प्राप्य = प्र + √आप् + क्त्वा (ल्यप्) ।
प्रतिष्ठिता = प्रति + √स्था + क्त + (इट्) । स्त्रीलिंग ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

अन्वय—(हे पार्थ) च अङ्गानि कूर्मः इव अयम् (पुरुषः) यदा सर्वशः, इन्द्रियार्थेभ्यः इन्द्रियाणि संहरते। (तदा) तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता (उच्यते)।

विषय-संकेत—'स्थितप्रज्ञ' का लक्षण—

अनुवाद—(हे अर्जुन), और (अपने) अङ्गों को कछुवे के समान यह (पुरुष) जब सब ओर से, इन्द्रियों के विषयों से (अपनी) इन्द्रियों को समेट लेता है, (तब) उस (पुरुष) की प्रज्ञा प्रतिष्ठित हुई (कही जाती) है।

शब्दार्थ—**च**=और,

अङ्गानि=(शरीर के) अङ्गों को।
कूर्मः इव=कछुवे के समान, कछुवे की भाँति।
अयम्=यह मुनि पुरुष। **यदा**=जब।
सर्वशः=सब (ओर) से।
इन्द्रियार्थेभ्यः=इन्द्रियों के विषयों से।
इन्द्रियाणि=इन्द्रियों को।
संहरते=समेट लेता है।
तस्य=उस पुरुष की। **प्रज्ञा**=बुद्धि।
प्रतिष्ठिता=प्रतिष्ठित हुई (कही जाती है)।

व्याकरण—**अङ्गानि**=अङ्ग नपुंसकलिंग शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं—

अङ्गम्	अङ्गे	अङ्गानि	प्र० वि०
अङ्गम्	अङ्गे	अङ्गानि	द्वि० वि०

(शेष अकारान्त पुंल्लिंग के समान)

सर्वशः=सर्व+शस् (तद्धित प्रत्यय)। इसी प्रकार बहुशः क्रमशः आदि।

इन्द्रियार्थेभ्यः=इन्द्रियाणाम् अर्थाः इन्द्रियार्थाः, तेभ्यः (पञ्चमी)

संहरते=सम्+√हृ+लट् लकार, प्रथम पु० ए० व० (आत्मने पद)।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

अन्वय—(हे पार्थ) निराहारस्य देहिनः रसवर्जम् विषयाः विनिवर्तन्ते। (च) परं दृष्ट्वा अस्य (तु) रसः अपि निवर्तते।

विषय-संकेत—'स्थितप्रज्ञ' पुरुष के, आसक्ति से भी मुक्त हो जाने का कथन।

अनुवाद—(हे अर्जुन), उपभोग न करने वाले देहधारी के आसक्ति को छोड़कर, सभी विषय लौट जाते हैं (किन्तु) परमात्मा को देखकर इस (स्थित प्रज्ञ पुरुष) की तो आसक्ति भी लौट जाती है। (अर्थात् उसे तो विषयों में आसक्ति भी नहीं रहती।

शब्दार्थ—**निराहारस्य**=आहार न करने वाले के अर्थात् विषयों का उपभोग न करने वाले (पुरुष) के।
देहिनः=देहधारी के (जीवात्मा के)।
रसवर्जम्=रस (आसक्ति) को छोड़कर, रस के सिवाय।
विषयाः=शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि इन्द्रियों के विषय।
विनिवर्तन्ते=लौट जाते हैं, उपभोग में आना बन्द हो जाते हैं।
परं दृष्ट्वा=परमात्मा (ब्रह्म) को जानकर (देखकर)।
अस्य=इस स्थितप्रज्ञ का।
रसः अपि=(वह) आसक्ति भी।
निवर्तते=लौट जाती है अर्थात् उसकी आसक्ति भी समाप्त हो जाती है।

व्याकरण—**देहिन**=देह+इन्=देहिन् का षष्ठी विभक्ति, एकवचन।
रसवर्जम्=रस+वर्जम् (वृज्+णमुल्—वर्जम् अव्यय है।
'वर्जयित्वा' के स्थान पर 'वर्जम्' का प्रयोग प्रायः समास में होता है—जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् में चौथे अंक में—गौतमी-वर्जम् इतरा निष्क्रान्ता (अर्थात् गौतमी को छोड़कर दूसरी सब चली गयीं)

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

अन्वय—(हे) कौन्तेय ! प्रमाथीनि इन्द्रियाणि यततः अपि विपश्चितः पुरुषस्य मनः प्रसभम् हरन्ति हि ।

विषय-संकेत—आसक्ति से छूटने पर इन्द्रियों द्वारा मन के हरे जाने का कथन ।

अनुवाद—हे कुन्तीपुत्र (अर्जुन) ये प्रमथन-स्वभाव वाली इन्द्रियाँ प्रयास करते हुए भी विद्वान् पुरुष के मन को, बलपूर्वक हर लेती ही हैं ।

शब्दार्थ—**कौन्तेय**=कुन्तीपुत्र (अर्जुन), सम्बोधन ।.
प्रमाथीनि=प्रमथन (मथने) के स्वभाव वाली ।
इन्द्रियाणि=आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियाँ ।
यततः=यत्न (प्रयास) करते हुए के भी ।
विपश्चितः=विद्वान् के ।
पुरुषस्य=पुरुष के ।
मनः=मन को ।
प्रसभम्=बलपूर्वक ।
हरन्ति=हर लेती है ।

व्याकरण—**कौन्तेय**=कुन्ती+ढक् (अपत्य अर्थ में तद्धित प्रत्यय) ।
इन्द्रियाणि='इन्द्रिय' शब्द का प्रथमा, बहुवचन (नपु लिंग) ।
यततः=यत्+शतृ (अत्), षष्ठी विभक्ति, ए० व०, पुंल्लिग ।
विपश्चितः='विपश्चित्' का षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।
विपश्चित्—विपश्चितौ, विपश्चितः—जैसे रूप बनेंगे ।
मनः='मनस्' का द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

मनः	मनसी	मनांसि ।	प्रथमा
मनः	मनसी	मनांसि ।	द्वितीया

हरन्ति=√हृ+लट्—हरति—हरतः—हरन्ति ।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६१।।

अन्वय—(हे पार्थ), (पुरुषः) तानि सर्वाणि (इन्द्रियाणि) संयम्य युक्तः मत्परः आसीत्, हि यस्य इन्द्रियाणि वशे, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता (भवति)।

विषय-संकेत—इन्द्रियों के संयम के बाद ही 'स्थितप्रज्ञ' होने का कथन ।

अनुवाद—(हे अर्जुन), (पुरुष) उन सब (इन्द्रियों) को नियन्त्रित करे, योगी हुआ (और) मेरे परायण हुआ बैठे, क्योंकि जिस (पुरुष) की इन्द्रियाँ वश में (होती) है, उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित (होती) है ।

शब्दार्थ—तानि = उनको ।

सर्वाणि = सबको ।

संयम्य = भलीप्रकार नियन्त्रण में करके ।

युक्तः = योगी हुआ ।

मत्परः = मेरे परायण हुआ, मुझ में ध्यान लगाये रहने वाला ।

आसीत् = बैठे ।

यस्य = जिसकी ।

इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ ।

वशे = वश में (होती) है ।

तस्य = प्रजा (बुद्धि) ।

प्रतिष्ठिता = प्रतिष्ठित होती है, अर्थात् वह 'स्थितप्रज्ञ' होता है ।

व्याकरण—संयम्य—सम् + √यम् + क्त्वा (ल्यप्) ।

युक्तः = √युज् + क्त, पुंल्लिग, एकवचन ।

आसीत् = √आस् + विधिलिङ्ग, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

मत्परः = मयि परः = मत्परः, सप्तमी तत्पुरुष समास ।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

अन्वय—(हे पार्थ), विषयान् ध्यायतः पुंसः, तेषु सङ्गः उपजायते, सङ्गात् कामः संजायते (च) कामात् क्रोधः अभिजायते ।

विषय-संकेत—आसक्ति में हानि का कथन ।

अनुवाद—**(हे अर्जुन) विषयों का ध्यान करते हुए की, पुरुष की उन (विषयों) में आसक्ति हो जाती है (और) आसक्ति से कामना उत्पन्न हो जाती है (और) कामना (में विघ्न पड़ने से) क्रोध उत्पन्न हो जाता है।**

शब्दार्थ—**विषयान्**=इन्द्रियों के विषयों (रूप, रस आदि) को ।

ध्यायतः=ध्यान करते हुए की ।

पुंसः=पुरुष की ।

तेषु=उन (विषयों) में ।

सङ्गः=आसक्ति ।

उपजायते=उत्पन्न हो जाती है ।

सङ्गात्=आसक्ति से ।

कामः=कामना (उसे प्राप्त करने की इच्छा) ।

संजायते=उत्पन्न हो जाती है ।

कामात्=कामना (में विघ्न पड़ने) से ।

क्रोधः=क्रोध ।

अभिजायते=उत्पन्न हो जाता है ।

व्याकरण—**ध्यायतः**=ध्यै (ध्याय+शतृ), पुंल्लिग, षष्ठी वि० एक वचन ।

पुंसः='पुमान्' शब्द का, षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।

पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः ।
पुमांसम्	"	पुंसः—आदि रूप चलेंगे ।

सङ्गात् में पञ्चमी विभक्ति 'काम' की उत्पत्ति का कारण होने से है । वस्तु जिससे उत्पन्न होती है, वह अपादान कारक होता है ।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

अन्वय—क्रोधात् संमोहः भवति, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः (भवति) स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः (भवति) (च) बुद्धिनाशात् (पुरुषः) प्रणश्यति ।

विषय-संकेत—आसक्ति से हानि का कथन—

अनुवाद—(हे अर्जुन) क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है अविवेक से स्मरण शक्ति का नाश हो जाता है, स्मरणशक्ति के नाश से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने से (वह पुरुष) नष्ट हो जाता है ।

शब्दार्थ— क्रोधात्=क्रोध से ।
संमोहः=अविवेक, मोह, मूढपन ।
भवति=हो जाता है ।
संमोहात्=अविवेक से ।
स्मृतिविभ्रमः=स्मरणशक्ति का नाश ।
स्मृतिभ्रंशात्=स्मरण शक्ति के नाश से ।
बुद्धिनाशः=बुद्धि का नाश ।
बुद्धिनाशात्=बुद्धि के नाश से (पुरुष) ।
प्रणश्यति=नष्ट हो जाता है ।

व्याकरण—क्रोधात् = क्रोध आदि में पञ्चमी विभक्ति है, क्योंकि जिससे कोई वस्तु पैदा होती है, वह अपादान कारक होता है और अपादान कारक में 'पञ्चमी विभक्ति होती है ।
स्मृतिविभ्रमः=स्मृतेः विभ्रमः, षष्ठी (तत्पुरुष समास) ।
बुद्धिनाशः=बुद्धेः नाशः " (" " ") ।
प्रणश्यति=प्र + √नश् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

प्रणश्यति	प्रणश्यतः	प्रणश्यन्ति
प्रणश्यसि	प्रणश्यथः	प्रणश्यथ
प्रणश्यामि	प्रणश्यावः	प्रणश्यामः ।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

अन्वय—तु रागद्वेषवियुक्तै: आत्मवश्यै: इन्द्रियै: विषयान् चरन् विधेयात्मा प्रसादम् अधिगच्छति ।

विषय-संकेत—आसक्तिरहित होकर भोग करने से लाभ का कथन ।

अनुवाद—किन्तु (हे अर्जुन), राग और द्वेष से हटी हुई (तथा) अपने वश में हुई इन्द्रियों से विषयों को भोगता हुआ, मन को वश में रखने वाला (पुरुष) प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है ।

शब्दार्थ—**राग-द्वेष-वियुक्तै:**=राग और द्वेष से वियुक्त (हटी हुई, अलग हुई) ।

आत्मवश्यै:=अपने वश में हुई ।

इन्द्रियै:=(आँख, नाक कान आदि) इन्द्रियों से ।

विषयान्=विषयों को ।

चरन्=भोगता हुआ ।

विधेयात्मा=मन को वश में रखने वाला (पुरुष) ।

प्रसादम्=प्रसन्नता को. (स्वच्छता को) ।

अधिगच्छति=प्राप्त हो जाता है ।

व्याकरण—**राग-द्वेष-वियुक्तै:**=रागश्च, द्वेषश्च (द्वन्द्व समास) रागद्वेषौ ताभ्याम् वियुक्तै: (तत्पुरुष समास) ।

आत्मवश्यै:=आत्मना वश्यै: (तत्पुरुष समास) ।

इन्द्रियै:='इन्द्रिय' का तृतीया विभक्ति, बहुवचन ।

विषयान्='विषय' का द्वितीया विभक्ति, बहुवचन ।

चरन्=√चर+शतृ (अत्), पुंल्लिङ्ग, प्रथमा, एकवचन ।

विधेयात्मा=विधेय: आत्मा (अन्त:करणम्) यस्य स: ।

अधिगच्छति=अधि+√गम्, लट् लकार, प्रथम पु० एकवचन ।

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि: पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

अन्वय—प्रसादे, अस्य सर्वदु:खानाम् हानि: उपजायते, (तदा) प्रसन्नचेतस: (अस्य) बुद्धि: आशु पर्यवतिष्ठते हि ।

विषय-संकेत—आसक्ति रहित होकर, इन्द्रियों के संयम से स्थितप्रज्ञता की प्राप्ति ।

अनुवाद—(और) प्रसन्न (स्वच्छ) होने पर इस (पुरुष) के सब दु:खों की क्षति हो जाती है, (तब) प्रसन्नचित्त वाले (इस पुरुष) की बुद्धि (प्रज्ञा) शीघ्र ही सब प्रकार से स्थित हो जाती है ।

शब्दार्थ—प्रसादे = प्रसन्न होने पर, स्वच्छ होने पर ।
अस्य = इसके ।
सर्वदु:खानाम् = सब दु:खों की ।
हानि: = क्षति, विनाश, अभाव ।
उपजायते = हो जाती है ।
प्रसन्नचेतस: = प्रसन्नचित्त वाले की ।
बुद्धि: = प्रज्ञा (बुद्धि)
आशु = शीघ्र ।
पर्यवतिष्ठते = सब प्रकार से स्थित हो जाती है ।

व्याकरण—प्रसादे = 'प्रसाद' पुंलिङ्ग शब्द का सप्तमी वि० एकवचन ।
हानि: = √हा + क्तिन् (स्त्रीलिङ्ग में कृत् प्रत्यय) ।
बुद्धि = √बुध् + क्तिन् ।
अस्य = 'इदम्' शब्द का पुंलिङ्ग का षष्ठी विभक्ति ए० व० ।

			स्त्रीलिङ्ग में		
अयम्	इमौ	इमे			
इमम्	इमौ	इमान्	इयम्	इमे	इमा:
अनेन	आभ्याम्	एभि:	आदि ।		
अस्मै	"	एभ्य:			
अस्मात्	"	एभ्य:			
अस्य	अनयो:	एषाम्	अस्मिन्	अनयो:	एषु:

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।६६।।

अन्वय—(हे पार्थ), अयुक्तस्य (पुरुषस्य) बुद्धिः नास्ति, अयुक्तस्य भावना (अपि) नास्ति । च अभावयतः शान्तिः न अस्ति, (ततः) अशान्तस्य सुखम् कुतः ?

विषय-संकेत—योगी (स्थितप्रज्ञ) न होने से दुःख की प्राप्ति का कथन ।

अनुवाद—(हे अर्जुन) अयोगी पुरुष को बुद्धि (ज्ञान) (प्राप्त) नहीं होती है, (साथ ही) अ-योगी को भावना भी (प्राप्त) नहीं होती । (और) भावना-रहित होते हुए को शान्ति नहीं मिलती है, (इस कारण से) अशान्त (पुरुष) को सुख (भी) कहाँ से (मिलेगा) ? (अर्थात् उसे सुख नहीं मिल सकता) ।

शब्दार्थ—**अयुक्तस्य** = अ-योगी को (युक्त का अर्थ योगी होता है ।)
बुद्धिः = प्रज्ञा ।
नास्ति = नहीं होती है ।
भावना = भावना (आत्मचिन्तन) ।
अभावयतः = भावना रहित होते हुए को ।
शान्तिः = शान्ति ।
अशान्तस्य = अशान्त, जो शान्ति वाला नहीं है ।
कुतः = कहाँ से ? किस प्रकार से ?

व्याकरण—**अयुक्तस्य** = न युक्तस्य (नञ् तत्पुरुष समास) ।
अभावयतः = न भावयतः (") ।
अशान्तस्य = न शान्तस्य (") ।
शान्तिः = √शम् + क्तिन् । स्त्रीलिङ्ग में कृत् प्रत्यय ।
कुतः = किम् + तसिल् (तस्) किम् की 'कु' ।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

अन्वय—(हे पार्थ), (विषयान्) चरताम् इन्द्रियाणाम् यत् मनः अनुविधीयते, तत् अस्य प्रज्ञाम्, वायुः अम्भसि नावम् इव, हरति ।

विषय संकेत— असंयमी पुरुष की बुद्धि स्थिर न हो सकने का कथन ।

अनुवाद—(हे अर्जुन), (विषयों को) चरती हुई इन्द्रियों का जब मन अनुसरण करता है तो (वह मन) इस (साधक पुरुष) की बुद्धि को उसी प्रकार हर लेता है, जैसे जल में (बहती हुई) नाव को वायु हर लेता है ।

शब्दार्थ—विषयान् = इन्द्रियों के विषयों = रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द को ।

चरताम् = चरती हुई का, उपभोग करती हुई का ।

इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियों का ।

यत् = जो (जिस कारण से) ।

मनः = मन (अन्तःकरण) ।

अनुविधीयते = अनुसरण करता है ।

तत् = तो (उस कारण से) ।

अस्य = इस (अयोगी-साधक पुरुष) की ।

प्रज्ञाम् = बुद्धि को ।

वायुः = पवन ।

अम्भसि = जल में ।

नावम् = नौका को ।

इव = जैसे ।

हरति = हर लेता है ।

व्याकरण—चरताम् = √चर् + शतृ (अत्) नपुंसक लिङ्ग षष्ठी, बहुवचन । इन्द्रियाणाम् का विशेषण है ।

अम्भसि = 'अम्भस्' शब्द का सप्तमी विभक्ति, एक वचन ।

हरति = √हृ + लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६८।।

अन्वय—तस्मात्,(हे) महाबाहो ! यस्य इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्य: सर्वश: निगृहीतानि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता (भवति) ।

विषय-संकेत—इन्द्रियों के संयम से ही पुरुष 'स्थितप्रज्ञ' होता है ।

अनुवाद उस कारण से, हे महाबाहो (अर्जुन), जिस (पुरुष) की इन्द्रियां, इन्द्रियों के विषयों से, सब प्रकार से निगृहीत (वश में की गई) हैं, उस (पुरुष) की प्रज्ञा प्रतिष्ठित है । (अर्थात् वह स्थितप्रज्ञ है ।)

शब्दार्थ—**तस्मात्** = उस कारण से ।
महाबाहो = महाबाहु का सम्बोधन, विशाल बाहु वाले (हे ! अर्जुन) ।
यस्य = जिस (पुरुष) की ।
इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ ।
इन्द्रियार्थेभ्य: = इन्द्रियों के अर्थों (विषयों) से ।
सर्वश: = सब प्रकार से ।
निगृहीतानि = निगृहीत हैं, वश में की हुई हैं ।
तस्य = उस (पुरुष) की ।
प्रज्ञा = बुद्धि ।
प्रतिष्ठिता = प्रतिष्ठित है ।

व्याकरण- **सर्वश:** = सर्व + शस् (तद्धित प्रत्यय) ।
निगृहीतानि = नि + √ग्रह + क्त । नपुंसक लिंग, बहुवचन ।
प्रतिष्ठिता = प्रति + √स्था + क्त । स्त्रीलिंग, एकवचन ।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

अन्वय:—सर्वभूतानाम् या निशा (भवति) तस्याम् संयमी जागर्ति, च यस्याम् भूतानि जाग्रति, पश्यत: मुने: सा निशा (भवति)।

विषय-संकेत—योगी और सामान्य प्राणियों में अन्तर का कथन ।

अनुवाद—(हे अर्जुन) सभी प्राणियों के लिए जो रात्रि (होती) है, उसमें संयमी (जितेन्द्रिय पुरुष) जागता रहता है, और जिस (रात्रि) में प्राणी जागते हैं, देखते हुए (अर्थात् ज्ञानी पुरुष) मुनि के लिए वह रात्रि होती है ।

अर्थात् सांसारिक पदार्थों का जो मोह सामान्य लोगों के लिए सुख देने वाली रात्रि के समान है, संयमी पुरुष उससे सावधान रहकर बचता रहता है ।

शब्दार्थ—सर्वभूतानाम् = सब प्राणियों के लिए ।
या = जो ।
निशा = रात्रि (होती है) ।
तस्याम् = उसमें ।
संयमी = जितेन्द्रिय पुरुष ।
जागर्ति = जागता है ।
यस्याम् = जिस (रात्रि) में ।
भूतानि = प्राणी (बहुवचन) ।
जाग्रति = जागते हैं ।
पश्यतः = देखते हुए ।
मुनेः = मुनि के लिए ।
सा = वह ।
निशा = रात्रि (होती है) ।

व्याकरण—सर्वभूतानाम् = सर्वाणि च तानि भूतानि, तेषाम् । (कर्मधारय समास) ।
जागर्ति = √जागृ + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।
जाग्रति = √जागृ + " " " बहुवचन ।
पश्यतः = √दृश् (पश्य) + शतृ (अत्) पुंल्लिङ्ग षष्ठी वि० एकवचन ।
मुनेः = 'मुनि' षष्ठी विभक्ति, एकवचन, पुंल्लिङ्ग ।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

अन्वयः— यद्वत् आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम् आपः प्रविशन्ति, तद्वत् यत् (पुरुषम्) सर्वे कामाः प्रविशन्ति, सः (पुरुषः) शान्तिम् आप्नोति, कामकामी शान्तिम् न (प्राप्नोति) ।

विषय-संकेत—कामनाओं के समाप्त होने पर ही शान्ति मिलती है ।

अनुवाद—जिस प्रकार, सब ओर से भरे जाते हुए अचल स्थिति वाले सागर में (चारों ओर से) जल प्रवेश कर जाते है, उसी प्रकार जिस (पुरुष) में सभी कामनायें प्रवेश कर जाती हैं (अर्थात् समाकर विलीन हो जाती हैं) वह (पुरुष) शान्ति को प्राप्त करता है (उससे भिन्न) कामनाओं की कामना करने वाला (तो शान्ति को प्राप्त) नहीं करता है ।

शब्दार्थ—यद्वत् = जिस प्रकार ।
आपूर्यमाणम् = सब ओर से भरे जाते हुए ।
अचलप्रतिष्ठम् = अचल प्रतिष्ठा वाले ।
समुद्रम् = सागर ।
आपः = जल (बहुवचन है) ।
प्रविशन्ति = प्रवेश कर जाते हैं, समा जाते हैं ।
तद्वत् = उसी प्रकार ।
यम् = जिस पुरुष में ।
कामाः = कामनाएँ, वासनाएँ, इच्छाएँ ।
प्रविशन्ति = प्रवेश कर जाती है ।
सः = वह (पुरुष) ।
शान्तिम् = शान्ति को ।
प्राप्नोति = प्राप्त कर लेता है ।
कामकामी = कामनाओं की कामना करने वाला ।
न = नहीं ।

व्याकरण—आपूर्यमाणम् = आ + पूर्य + शानच् तुम् ।
अचलप्रतिष्ठम् = अचला प्रतिष्ठा यस्य तम् ।
आपः = सदैव बहुवचन में प्रयुक्त 'अपस्' का प्रथमा बहुवचन ।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

अन्वयः— यः पुमान् सर्वान् कामान् विहाय निर्ममः, निरहंकारः निस्पृहः चरति, सः शान्तिम् अधिगच्छति ।

विषय-संकेत—आसक्ति रहित होकर जीवन बिताने से ही शान्ति मिलती है ।

अनुवाद—जो पुरुष सब कामनाओं को छोड़कर ममता रहित हुआ अहंकार रहित हुआ (और) स्पृहा रहित हुआ (संसार में) विचरण करता है (संसार का उपभोग करता है,) वह शान्ति को प्राप्त होता है ।

शब्दार्थ—**यः पुमान्**=जो पुरुष ।
सर्वान्=सब ।
कामान्=कामनाओं को ।
विहाय=छोड़कर ।
निर्ममः=ममता रहित हुआ ।
निरहंकारः=अहंकार रहित हुआ ।
निस्पृहः=स्पृहा रहित हुआ ।
चरति=विचरण करता है, (उपभोग करता है ।)
सः=वह (पुरुष) ।
शान्तिम्=शान्ति को ।
अधिगच्छति=प्राप्त होता है ।

व्याकरण—**पुमान्**=प्रथमा विभक्ति, एकवचन ।

पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः—इत्यादि रूप होते हैं ।

विहाय=वि √हा + क्त्वा (ल्यप्)
निस्पृहः= निर्गता स्पृहा यस्मात् सः (बहुव्रीहि समास)
अधिगच्छति=अधि + √गम् + लट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

अन्वयः—(हे) पार्थ ! एषा ब्राह्मी स्थितिः, एनाम् प्राप्य (पुरुषः) न विमुह्यति, (अपितु) अन्तकाले अपि अस्याम् स्थित्वा ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति ।

विषय-संकेत—'स्थितप्रज्ञ' होना ही ब्रह्म-प्राप्ति है ।

अनुवाद—हे अर्जुन, यह (मेरे द्वारा कही गयी) ब्रह्म-प्राप्ति की दशा है, इसको प्राप्त करके (पुरुष) विमूढ़ नहीं होता है (अपितु) अन्तकाल में भी इसमें स्थित रहकर ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त होता है । अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर ब्रह्मानन्द को प्राप्त करता है ।

शब्दार्थ—पार्थ = पृथा का पुत्र, सम्बोधन है । अर्थात् हे अर्जुन ।
एषा = यह (मेरे द्वारा कही गयी)
ब्राह्मी = ब्रह्म-प्राप्ति की ।
स्थितिः = दशा है ।
एनाम् = इस (दशा) को ।
प्राप्य = प्राप्त करके ।
न विमुह्यति = विमूढ़ नहीं होता है, मोह में नहीं फंसता है ।
अन्तकाले = अन्तिम अवस्था (वृद्धावस्था) में ।
अपि = भी ।
अस्याम् = इस में ।
स्थित्वा = स्थित होकर ।
ब्रह्मनिर्वाणम् = ब्रह्म-सम्बन्धी निर्वाण (मोक्ष) को ।
ऋच्छति = प्राप्त करता है ।

व्याकरण—स्थितिः = √स्था + क्तिन् । स्त्रीलिङ्ग में 'कृत्' प्रत्यय ।
प्राप्य = प्र + √आप् + क्त्वा (ल्यप्) ।
स्थित्वा = √स्था + क्त्वा ।

—:०:—

स्मरणीय उद्धरण एवं सूक्तियाँ

१. गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥११॥

२. देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

३. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥१६॥

४. अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ॥१८॥

५. न जायते म्रियते वा कदाचिन्-
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

६. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

७. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

८. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥२७॥

९. आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

१०. देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ॥३०॥

११. धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

१२. संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

१३. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

१४. योगस्थः कुरु कर्माणि ॥४८॥

१५. योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

१६. वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

१७. इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

१८. वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

१९. सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभि जायते ॥६२॥

२०. बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

२१. अशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

२२, या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

२३. आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

---:o:---

कोई काम नहीं
हिन्दी वाले सर
श्री / डॉ० रामकृष्ण

श्लोकानुक्रमणिका

श्रीमद् भगवद्गीता



Kaladarpan, Gwl.



साहित्य भण्डार

सुभाष बाजार, मेरठ

फोन: 0121-2656444, 2423754

फैक्स : 0121-4009669